संस्कृत शिक्षा-प्रचार-पुस्तकमाला, सं० १.

संस्कृत-शिक्षा के सम्बन्ध में

सुप्रसिद्ध नेताओं तथा विद्वानों के विचार

(संस्कृत शिक्षा की अवनति के ऐतिहासिक विवेचन के सहित)

विद्याभूषण श्री वासुदेव द्विवेदी, वेदशास्त्री साहित्याचार्य

(सम्पादक—संस्कृतशिक्षा-सुधार-प्रचार-पुस्तकमाला)

प्रकाशक—

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

सूर्यकुंड, काशी।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तिका में संस्कृतभाषाकी उपयोगिता और उसके प्रचारकी आवश्यकता के सम्बन्ध में देश-विदेश के कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसका उद्देश्य है सर्वसाधारण हिन्दुसमाज में संस्कृत के प्रति अनुराग उत्पन्न करना और इस प्रकार संस्कृत के प्रचार में सहयोग पहुँचाना। यद्यपि मेरी दृष्टि में इसके प्रकाशनका कोई विशेष महत्त्व नहीं। क्यों कि जिस देश में अनेक शताब्दियों तक संस्कृत राष्ट्रभाषा रही हो, जहाँ का सारा साहित्य संस्कृतमय हो, जहाँ के निवासियों के समस्त धार्मिक क्रियाकलाप संस्कृतमें होते हों, जहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता की पुनीत धारा संस्कृत की सरिता से निर्गत हो और जहाँ की भाषाओंका अब भी संस्कृत से पोषण और सम्वर्धन होता हो वहीं के निवासियों को संस्कृत का महत्व समझाने के लिये प्रयत्न करना एक हास्यास्पद बात प्रतीत होती है। यह उस [illegible] नी पुत्रको उसकी माता का महत्त्व स[illegible] न्ही विशेष कारणों से अपनी माता [illegible] तो उसके हितैषियोंका यह धर्म ह[illegible] उसके उपकारोंका स्मरण दिल[illegible] धित करें।

यह [illegible] जिनकी चर्चा इस पुस्तक [illegible] अपनी इस परमपूजनीय [illegible] है जो इसके स्वस्थ चिरा[illegible] है। अत एव यह परम अ[illegible] जाय और उसके हृदय [illegible] इसी आवश्यकता की [illegible] है।

पाठ[illegible] र ही विरत हो जाँय प्र[illegible] भी इसका उपयोग कर [illegible] कोई सज्जन इस पुस्तक [illegible] हम उनके बहुत ही कृत[illegible] द्वानों के भी विचार प्रका[illegible]

अन्त[illegible] और इसके अंग्रेजी अंशों [illegible] जी द्विवेदी बी० ए० ने [illegible] न्यवाद देते हैं और हार्दिक [illegible] करते हैं।

आश्विन, २००६,

सम्पादक,

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय,

सूर्यकुण्ड, काशी।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तिका में संस्कृतभाषाकी उपयोगिता और उसके प्रचारकी आवश्यकता के सम्बन्ध में देश-विदेश के कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसका उद्देश्य है सर्वसाधारण हिन्दुसमाज में संस्कृत के प्रति अनुराग उत्पन्न करना और इस प्रकार संस्कृत के प्रचार में सहयोग पहुँचाना। यद्यपि मेरी दृष्टि में इसके प्रकाशनका कोई विशेष महत्त्व नहीं। क्यों कि जिस देश में अनेक शताब्दियों तक संस्कृत राष्ट्रभाषा रही हो, जहाँ का सारा साहित्य संस्कृतमय हो, जहाँ के निवासियों के समस्त धार्मिक क्रियाकलाप संस्कृतमें होते हों, जहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता की पुनीत धारा संस्कृत की सरिता से निर्गत हो और जहाँ की भाषाओंका अब भी संस्कृत से पोषण और सम्बर्धन होता हो वहीं के निवासियों को संस्कृत का महत्व समझाने के लिये प्रयत्न करना एक हास्यास्पद बात प्रतीत होती है। यह उस [illegible] नी पुत्रको उसकी माता का महत्त्व स [illegible] न्ही विशेष कारणों से अपनी माता [illegible] तो उसके हितैषियोंका यह धर्म ह [illegible] उसके उपकारोंका स्मरण दिल [illegible] धित करें।

यह [illegible] जिनकी चर्चा इस पुस्तक [illegible] अपनी इस परमपूजनीय [illegible] है जो इसके स्वस्थ चिरा [illegible] है। अत एव यह परम अ [illegible] जाय और उसके हृदय [illegible] इसी आवश्यकता की [illegible] है।

पाठ [illegible] र ही विरत हो जाँय अ [illegible] भी इसका उपयोग कर [illegible] कोई सज्जन इस पुस्तक [illegible] हम उनके बहुत ही कृत [illegible] द्वानों के भी विचार प्रका [illegible]

अन्त [illegible] और इसके अंग्रेजी अंशो [illegible] जी द्विवेदी बी० ए० ने [illegible] न्यवाद देते हैं और हार्दिक [illegible]

आश्विन, २००६,
सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय,
सूर्यकुण्ड, काशी।

सम्पादक,

संस्कृतशिक्षा के सम्बन्ध में

सुप्रसिद्ध नेताओं तथा विद्वानों के विचार

संस्कृतभाषाऽभिनन्दनात्मक

मङ्गलाचरण

१

अज्ञानाम्भोधिमज्जन्निखिल-जन-समुत्तारणे कर्णधारः
सारः सृष्टेः पुराणः, श्रुतियुवतिहृदः कोऽपि माणिक्यहारः।
विश्वेषामुन्निनीषा-कलित-शुचिधियां ज्ञान-दीक्षा-प्रकारः
शोकं लोकस्य भिद्यादुदित-गुणगणो देववाणी-विहारः॥

महामहोपाध्याय श्रीनारायण शास्त्री खिस्ते
(प्रधान, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काशी)

२

ययैवादौ सृष्टा नरजगति सभ्यत्वसरणि-
र्यदीयं साम्राज्यं क्वचन समये प्राज्यमभवत्।
यतोऽमूः सम्भूता जगदुदरसूता नरगिरो
गिरासौ गैर्वाणी जयति वरवाणी-परिवृढा॥

कविशिरोमणि भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री
(प्रा० महाराजा संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर)

महामना मालवीयजी

हिन्दु विश्वविद्यालय काशी के शिक्षाक्रम में संस्कृत को प्रथम स्थान क्यों दिया गया इस प्रसङ्ग को लेकर महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी की उक्ति—

मुझे यह कहने की विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि उपरोक्त नियमावली में संस्कृत को क्यों प्रथम स्थान दिया गया। हमें अपनी उज्वल वंश परम्परा तथा प्राचीन पैतृक मर्यादा का अभिमान है। हमारी पैतृक सम्पत्तियों में से सबसे बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है। इसी में हमारा पवित्र साहित्य, धार्मिक तत्त्व ज्ञान और सभी

प्रकार की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्ग पूर्णतया सुरक्षित हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना व्यक्तिगत शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, तथा चरित्रसम्बन्धी उन्नति किस प्रकार कर सकता है तथा फिर कैसे अपने को एक शक्तिशाली समाज में सङ्गठित कर सकता है इस का पूर्ण विवेचन हमें इसी भाषा में मिलता है। भाषा की उत्तमता के विचार से भाषामर्मज्ञों ने संसार की सभी भाषाओं में संस्कृत को ही प्रथम स्थान दिया है। मनुष्य के चिन्तित तथा उत्कृष्ट विचारों को सुमधुर ललित शैली में व्यक्त करने की यह सदैव ही सुन्दर माध्यम रही है।"

(श्रीमालवीय-जीवनचरित. द्वि० भाग. पृ०४६)

लाला हरदयाल एम० ए०

हिन्दू जाति और हिन्दू सभ्यता के परम हितैषी सुप्रसिद्ध प्राचीन नेता श्रीयुत लालाजी के संस्कृत तथा अंगरेजी शिक्षित व्यक्तियों के प्रति मार्मिक उद्गार—

वह हिन्दू जो संस्कृत से अनभिज्ञ है प्रतिष्ठित हिन्दू नहीं कहला सकता। कई लोग कहते हैं—संस्कृत एक मृतभाषा है। सच तो यह है कि हमहीं मरे हुए हैं किन्तु संस्कृत भाषा नहीं मरी। अंगरेजी शिक्षा के कारण हमारा यह स्वभाव हो गया है कि हम देश सम्बन्धी सभी विषयों पर अंगरेजी भाषामें ही विचार प्रगट करते हैं। वस्तुतः ऐसा करने की कोई अवश्यकता नहीं जान पड़ती। उस ग्रेजुएट का जो संस्कृत और अङ्गरेजी दोनों जानता है, कर्तव्य है कि दोनो में से संस्कृत को अपनावे। परन्तु यह पराधीन जाति का अभाग्य है कि वह अपने विजेताओं की भाषा को अपनी भाषा से अधिक प्रेम करती है और अच्छा समझती है परन्तु ऐसा करना उसके लिये मृत्यु को स्वयं बुलाना है।

हिन्दी मिलाप-गंगा, अप्रेल १६३१

महात्मा गान्धी

संस्कृत की उपेक्षा पर किये गये प्रश्न का महात्मा गान्धी ने रामगढ़ से १७ मार्च १६४० ई० को उत्तर लिखा था। २३ मार्च १६४० ई० के "हरिजन" में प्रकाशित वह प्रश्नोत्तर यह है—

प्र०—क्या आप जानते हैं कि पटना विश्वविद्यालय ने संस्कृत का अध्ययन व्यवहारतः बहिष्कृत कर दिया है? क्या आप इस व्यवहार को ठीक मानते हैं? यदि नहीं, तो क्या आप अपना मत "हरिजन" में प्रकट करेंगे?

उ०— मैं नहीं जानता कि पटना विश्वविद्यालय ने क्या किया है पर मैं आप से इस बात में पूर्णतः सहमत हूँ कि संस्कृत के अध्ययन की खेदजनक उपेक्षा हो रही है। मैं उस पीढ़ी का हूँ जो प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में विश्वास रखती थी। मैं नहीं मानता

कि ऐसा अध्ययन समय और उद्योग का अपव्यय है। मैं तो मानता हूँ कि यह आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन में सहायक है। जहाँ तक भारत का संबन्ध है, यह बात किसी और प्राचीन भाषा की अपेक्षा संस्कृत के पक्ष में अधिक सत्य है और प्रत्येक राष्ट्रवादी को इसका अध्ययन करना चाहिए। क्योंकि इससे प्रांतीय भाषाओं का अध्ययन अन्य उपायों की अपेक्षा सुगमतर होता है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्व पुरुष सोचते और लिखते थे। किसी हिन्दू बालक या बालिका को संस्कृत के प्राथमिक ज्ञान से हीन नहीं रहना चाहिए, यदि उसे अपने धर्म की आत्मा का सहज बोध पाना है। यों गायत्री अनुवाद्य नहीं है। किसी अनुवाद में उसके मूल की संगीति नहीं मिल सकती जो मैं मानता हूँ कि, अपना ही अर्थ रखती है। मैंने जो कहा है उसका गायत्री एक उदाहरण है।

नागरी प्रचारणी पत्रिका काशी
कार्तिक,१९९७ वि०।

मा० चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

२८, २९, ३० अप्रैल को काशी में सम्पन्न अ० भा०संस्कृत साहित्य सम्मेलन के चतुर्दश अधिवेशन के अवसर पर सन्देश देते हुए भारत के गवर्नर जनरल माननीय श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने संस्कृत के महत्व के सम्बन्ध में जो आलङ्कारिक भाषामें अपना विचार प्रगट किया था वह निम्नलिखित है—

"आपने मुझसे संस्कृत साहित्य की महत्ता के सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट करने के लिये लिखा है। परन्तु जिस प्रकार निखरे सुवर्णपर सोने का पानी चढाना, लिली पुष्प को आकर्षित बनाने के लिये उस पर चित्रकारी करना, वायोलेट (violet) पुष्प को सुगन्धित करने के लिये उस पर सुगन्ध छिडकना, वर्फ को चिकना करना, इन्द्रधनुषमें एक नवीन रंग जोड़ना, तथा मोमवत्ती से स्वर्गीय सौन्दर्य देखना व्यर्थ तथा हास्यास्पद है उसी भांति संस्कृत की महत्ता के सम्बन्धमें कुछ कहना भी व्यर्थ ही है।

(सम्मेलन कार्यालय से उपलब्ध
अंग्रेजी सन्देश का अनुवाद)

"You have asked me to say what I think about Sanskrit literature and its value. To gild refined gold, to paint the lily, to throw a perfume on the violet, to smooth the ice, or add another hue unto the rainbow or with taper light to seek the beauteous eye of heaven to garnish, is wasteful and ridiculous excess".

मा० पं० जवाहर लाल नेहरू

गत फरवरी मासमें राष्ट्र भाषा के प्रश्नपर हमारे माननीय प्रधानमन्त्री ने एक लेख लिख कर अपने विचार प्रगट किये थे। उक्त लेखमें यद्यपि हिन्दुस्थानी का ही अधिक समर्थन किया गया है तथापि स्वतन्त्र रीति से संस्कृत शिक्षा को प्रोत्साहित करने के सम्बन्धमें भी आप ने जो विचार प्रगट किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण और संस्कृत शिक्षा केलिये आशाप्रद है। उनकी पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूपमें उसे सर्वोत्तम कौनसी वस्तु प्राप्त हुई है तो मैं निस्सङ्कोच उत्तर दूँगा कि यह सम्पत्ति संस्कृत भाषा और साहित्य और उसके भीतर जमा सारी पूँजी ही है। यह एक उत्तम उत्तराधिकार है और जब तक वह कायम है तथा हमारे जीवन को कायम किये है, तब तक भारत की आधारभूत प्रतिभा भी अक्षुण्ण रहेगी। यह बडे आश्चर्य की बात है कि अतीत की सम्पत्ति होते हुए भी संस्कृत एक जीवित परम्परा है। मैं संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना और अपने विद्वानों को इस भाषा के मुंदे साहित्य की, जो प्रायः भुला दिया गया है, छानबीन में लगाना पसन्द करूँगा।

१५ मार्च १९४९
"आजकल"

मा० मौलाना आजाद

भारत सरकार के शिक्षामन्त्री माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन के काशी अधिवेशन के अवसर पर सन्देश देते हुए कहा—

"यह भाषा भारत के प्राचीन दर्शन तथा साहित्य से परिपूर्ण है। अतः यह आवश्यक है कि हम इस के पठन-पाठन के लिये विशेष प्रबन्ध करें ताकि हमें इसके अधिक से अधिक विद्वान् मिल सकें।

सम्मेलन से उपलब्ध अङ्गरेजी सन्देश का अनुवाद

This language contains India's ancient philosophy and her literature, therefor it is necessary that special arrangements should be made to teach this language so that we should have more and more of its scholars.

मा० डा० राजेन्द्र प्रसाद

भारतीय विधान परिषद के अध्यक्ष स्वनामधन्य देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद अपनी पुस्तक "संस्कृत का अध्ययन" में लिखते हैं—

संस्कृत का अभ्यास और पठन-पाठन क्यों प्रोत्साहित किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर थोड़े में यही है—क्योंकि इस के भांडार में अमूल्य रत्न पड़े हैं, क्योंकि हमारी संस्कृति और सभ्यता का स्रोत इसी से निकला है और आज तक जारी है, क्योंकि हम मानते हैं कि मानव समाज की आज की विक्षिप्त अवस्था में शायद इसमें कुछ ऐसा मिल जाय जो शांतिप्रद औषध का काम दे, क्योंकि हम मानते हैं कि आज भी हम संसार में इसी के कारण जीवित हैं और भविष्य में भी जीवित रहेगें, क्योंकि अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हम कैसे और क्यों पीछे पड़ गए और हमारी प्रगति कैसे अवरुद्ध हो गई।

(संस्कृत का अध्ययन, पृष्ठ ४)

माननीय पं० गोविन्द वल्लभ पन्त

युक्तप्रान्त के प्रधानमन्त्री माननीय पण्डित श्रीगोविन्द वल्लभ पन्त ने काशीस्थ राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के तृतीय समावर्तन समारोह में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए संस्कृत के सम्बन्ध में कहा—

संस्कृत हमारी संस्कृति की आत्मा है। उसी से हम अपने प्राचीन महत्व को, आर्यवचनों को, देवता, धर्म, दर्शन, ज्ञान, तथा इतिहास आदि को प्राप्त करते हैं। जबतक संस्कृत भाषा विद्यमान है, हमारी संस्कृत की मौलिक भित्ति बनी रहेगी।

एक समय था जब कि संस्कृत हिन्द से बाहर के लोगों की भी भाषा थी। हिन्दुकुश से पूर्व में यही भाषा फैली थी। हमारे दर्शन ने, पाणिनि के व्याकरण ने और हमारे संस्कृत नाटकों ने सारे संसार को आश्चर्य में डाल दिया।

"संसार" १२ जनवरी १९४९

मा० श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन

संस्कृत, भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत निष्ठ हिन्दी के प्रबल समर्थक युक्त-प्रान्तीय असेम्बली के अध्यक्ष माननीय बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन ने काशी के गत अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन में संस्कृत के सम्बन्ध में भाषण करते हुए कहा—

"संस्कृत संसार की समस्त भाषाओं की जननी है और भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। सन्धि और समास के बल से संस्कृत में जो ओज है वह संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं। संस्कृत के महाभारत और वाल्मीकि रामायण की समता का संसार में कोई ग्रन्थ नहीं।

मैं चाहता हूँ कि विदेशों में रहने वाले भारतीय राजदूतों के साथ संस्कृत विद्वान जायें और अपनी संस्कृति एवं सभ्यता का प्रचार विदेशों में करें।

संसार
२ मई, १९४९ ई०

माननीय श्री माधव श्रीहरि अणे

विहार प्रान्त के वर्तमान शासक (गवर्नर) तत्र भवान् लोकनायक माननीय श्री माधव श्रीहरि अणे महोदय ने पटना के संस्कृत सञ्जीवन समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अध्यक्ष पद से संस्कृत भाषा में भाषण करते हुए कहा—

संस्कृतभाषाया गौरवं यथार्थतया वर्णयितुं कः समर्थः?········वैदिक-संस्कृते र्मूलम्, प्राकृतभाषाणामुद्गमः, अखिलकलाविद्यानां खनिः संस्कृतभाषाऽस्माकम्। तदपकर्षात् सर्वभारतीयानामपकर्षो भवेत्। तदुत्कर्षात् सर्वभारतस्योत्कर्षो भवेत्। अत एव तदुत्थानप्रयत्नः सर्वैः संहतीभूय कार्यः।

(श्री अणे जी के हस्तलिखित व्याख्यान से उद्धृत)

२

इस के पश्चात् लखनऊ के संस्कृत अध्यापक संघ के पञ्चम अधिवेशन के सभापतिपद से हिन्दी में भाषण करते हुए लोक नायक ने संस्कृत का जिस प्रौढि के साथ समर्थन किया वह भी पढ़ने योग्य है। उन्हो ने कहा—

संस्कृत में वह आकर्षण शक्ति है जिसके सम्पर्क में आने से कोई भी विदेशी, विभिन्न सांस्कृतिक व्यक्ति उसकी ओर हठात् आकृष्ट हो जाता है और उसकी भारतीय संस्कृति में सदा के लिये घुल मिल जाता है। वर्तमान विभिन्न प्रादेशिक एकताओं के वावजूद प्राचीन काल में अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी समस्त भारत एक सूत्रमें संग्रथित रहा। शक, हूणादि सारी संस्कृतियाँ इस (संस्कृत) के सम्पर्क में आकर इसी की संस्कृति में घुल मिल गईं। संस्कृत की कमी से ही देश का विभाजन हुआ। यह देश की अखण्डता का अमोघ अस्त्र है। आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान कर संस्कृत को ज्ञानभाषा बनायें। यह हमारी सांस्कृतिक भाषा है। पहले और आज भी हमारे

जन्म से लेकर मरण तक के सारे संस्कार काश्मीर से कन्या कुमारी तक इसी एक भाषा में होते आये हैं। यह मृतभाषा नहीं, वरन् अन्यभाषाओं की जीवन दात्री शक्ति है। राजदूतों के लिये संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाय, कारण वे हमारे सांस्कृतिक प्रतिनिधि होते हैं।..................संस्कृत की उपेक्षा से हम देश की अखण्डता का अमोघ अस्त्र खो बैठेंगें और फिर भारत की अन्यत्र प्रतिष्ठा एवं सम्मान स्वप्नवत् हो जायगा।

दैनिक सन्मार्ग
२० दिसम्बर, १६४८ ई०

माननीय श्री हरेकृष्ण महताव

अखिल उत्कल संस्कृत छात्र सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए उड़ीशा के प्रधानमन्त्री माननीय श्री हरेकृष्ण महताव ने कहा—

संस्कृत बहुत भाषाओं की माता है और प्रगतिशील भाषाओं का संस्कृत ही उद्गम स्थान है। संस्कृत भाषा द्वारा ही नसल बनसल धर्म विज्ञान तथा दर्शन का पठन पाठन होता रहा है। संस्कृत मृतभाषा नहीं प्रत्युत जीवित और प्रकाशपूर्ण है। संस्कृत का महत्व घटाया नहीं जा सकता।

समाज (उड़िया दैनिक) ५ जनवरी
१६४६ ई०

मा० श्री श्रीप्रकाश

आसाम के वर्तमान गवर्नर माननीय श्री श्रीप्रकाश जी ने काशी के अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन में सन्देश भेजते हुए लिखा था—

"संस्कृत कदापि मृतभाषा नहीं है, वह जाग्रत है। मेरा स्वयं यही अनुभव है कि इसके द्वारा कितने ही स्थानों में मुझे सफलता मिली है। नेपाल, आसाम और एक अवसर पर कराची में भी इस भाषा के द्वारा मैं अपना विचार प्रगट कर सका जब कोई भी दूसरी भाषा कार्य की न रही। मुझे इस का खेद है कि मैंने इस सुन्दर प्रौढ भाषा को अच्छी तरह नहीं पढ़ा और जो भी बाल्यावस्था में पढ़ा था उसे असावधानी और अविवेक के कारण भूल गया। इसे प्रोत्साहित करना और सुशिक्षित समाज के लिये इसे अन्तर प्रान्तीय भाषा बनाने का प्रयत्न करना सर्वथा उचित और आवश्यक है।

(सम्मेलन कार्यालय से प्राप्त हस्त लिखित पत्र से)

मा० आसफ़ अली

पुरी के संस्कृत विद्यालयों के छात्रों के समक्ष भाषण करते हुए उड़ीशा के गवर्नर माननीय श्री आसफ़ अली ने कहा—

संस्कृत भाषा को सुदृढ़ बनाने के लिये सरकार कुछ भी न उठा रखेगी। हमारे पूर्वजों ने संस्कृत भाषा के रूपमें हमारे उपयोग के लिये बहुत बड़ा भण्डार छोड़ दिया है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसका किस प्रकार उपयोग करें।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि जो कुछ भी सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में निहित है उसपर आधुनिक ढंग से सोचें और तब उसे कार्यान्वित करने की चेष्टा करें अन्यथा वह असामयिक फलतः अनुपयोगी सिद्ध होगा।

२२ अप्रैल १९४९
'संसार'

मा० श्री सम्पूर्णानन्द

युक्त प्रान्त के माननीय शिक्षामन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने ४ सितम्बर १९४८ को काशीस्थ विद्वत्समाज द्वारा किये गये अभिनन्दन समारोह के अवसर पर अभिनन्दन के उत्तर में कहा—

···आज प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृत की उपादेयता को मानना होगा। बिना संस्कृत के कोई भारतीय है ही नहीं। लेकिन आज हमें संस्कृत भाषा को एक नवीनता देनी है जिससे वह हमारे सामान्य जीवन के उपयोग में आ जाय।·········

संसार (दैनिक)
(५ सितम्बर १९४८)

२

३ नवम्बर सन् १९४८ को गोयनका संस्कृत छात्रावास का शिला न्यास करते हुए शिक्षामन्त्री जी ने पुनः कहा—

जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत का समय बीत गया वे गलती पर है। संस्कृत न केवल भारत में वल्कि समस्त संसार में व्याप्त है। जो सन्देश इस भाषा में है वह अन्यत्र नहीं है। संस्कृत में बहुमूल्य विभूतियाँ पड़ी हुई हैं। जो यह लाञ्छन लगाते हैं कि संस्कृत मृतभाषा है वे गलत सोचते हैं। संस्कृत जीवित ही नहीं बल्कि मुर्दों के लिये भी सञ्जीवनी है। हम चाहते हैं कि संसार में काफी लोग संस्कृत के जानने वाले हों।

"संसार" (२ नवम्बर १९४८)

वीर सावरकर

हिन्दु महासभा के सुप्रसिद्ध नेता, वीर, बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "हिन्दुत्व" में लिखते हैं—

जिस प्रकार हमारा इतिहास हमारे समस्त जातीय क्रियाकलापों को बतलाता है उसी प्रकार हमारा साहित्य हमारे जातीय विचारों को प्रगट करता है। विचारों को, जैसा कि कहा जाता है, मातृभाषा से अलग नहीं किया जा सकता, और संस्कृत हमारी मातृ-भाषा है जिसमें हमारी मातायें बोलती थीं और जिससे हमारी वर्तमान भाषायें उद्भूत हुई हैं। हमारे देवता संस्कृत बोलते थे, हमारे ऋषि संस्कृतमें विचारते थे और हमारे कवि संस्कृतमें लिखते थे। हमारी सभी वस्तुएँ, हमारे सर्वश्रेष्ठ विचार, भावनाएँ तथा कवितायें संस्कृतभाषा से ही वेष्टित हैं। यह अब भी करोड़ों के लिये देववाणी है, दूसरों के लिये यह उनके पूर्वजों की भाषा है और समस्त मानव समाज के लिये यह सर्वश्रेष्ठ भाषा तथा सामूहिक पैतृक सम्पत्ति है। यह एक सामूहिक कोष है जोह मारी सभी भाषाओं— गुजराती, गुरुमुखी, सिन्धी, हिन्दी, तामिल, तेलगु, महाराष्ट्री, मलयालम, बंगाली और सिंहाली की भी संवृद्धि करता है। संस्कृत वह जीवनदात्री धमनी है जो हम लोगों के शरीर में हमारी भावनाओं तथा आकाङ्क्षाओं में सामञ्जस्य स्थापित करती हुई उन्हें जीवन तथा शक्ति प्रदान करती है।

हिन्दुत्व, पृ० ७७–७८

As our History tells the story of action of our race so does our literature taken in its fullest sense tells the story of thought of hour race. Thought, they say is insep-arable from our common tongue the संस्कृत, verily it is our mother tongue—the tongue in which the mothers of our race spoke and which has given birth to all our pre-sent tongues. Our Gods spoke in संस्कृत, our sages thought in संस्कृत, our poets wrote in संस्कृत, All that is best in us—the best thoughts, the best ideas, the best line—seeks instictively to clothe itself in संस्कृत. To millions it is still the language of their Gods; to others it is the language of their ancestors; to all it is the language "Par excell-ence a common inheritance, a common treasure, that enriches all the famialy of our sister languages गुजराती

and गुरुमुखी, सिंधी and हिन्दी, तामिल and तेलगु, महाराष्ट्री and मलयालम्, बंगाली and सिंघाली constitutes the vital nerve-thread that runs through us all vivifying and tonning our feelings and aspirations into a harmonious whole.

From:—
(Hindutva by B. D. Savarkar.)
(Pages 77-78.)

डाक्टर मुञ्जे

हिन्दु महासभा के यशस्वी नेता डाक्टर बी० एस० मुञ्जे महोदयने आगरा में सम्पन्न अखिल भारतीय संस्कृत महासम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन के सभापति पद से भाषण करते हुए संस्कृतशिक्षा की रक्षा के सम्बन्ध में कहा—

संस्कृतं हि भारतीय संस्कृतेः प्रतीकं भाण्डागारश्च। नहि इयं संस्कृतिः केवलं हिन्दूनां सम्पत्तिः। भारतीया यवना आर्याणामेव वंशजाः,तेऽपि चित्रकला वास्तुकला संगीतादिषु शुद्धां आर्यसरणिमेव अनुसरन्ति। यवन-गायकाः सामवेदात् सङ्गीतस्य प्रणवाच साम्नः उत्पत्तिं कथयन्ति। सरस्वतीं शङ्करं नारदं तुम्बुरुं च सङ्गीताचार्या इति स्तुवन्ति। संस्कृत-मूला वाचो भाषन्ते। धर्मेऽपि भारत-प्रचलित इस्लामधर्मे आर्यसंस्कृतेः प्रभावः प्रत्यक्षमेव दृश्यते। भगवतो गौतमस्य धर्मोपदेशैः सह भारताद् वहिर्गत्वा इयं संस्कृतिः श्याम-यव-द्वीप-जापानादीन् देशान् विजितवती। अद्यापि तत्रत्या धर्म्मकला-वाङ्मयक्षेत्रेषु भारतीय-भावानुवद्धा दृश्यन्ते। लङ्का-श्यामयोः संस्कृतवहुला भाषा राजकार्ये साहित्ये च प्रयुज्यते। मोक्षमूलरप्रभृत्यनुवादकानां प्रयासफलेन रामतीर्थ-विवेकानन्द-सदृश-साधूनां प्रचार-सामर्थ्येन पाश्चात्यदेशेष्वपि भारतीय-विचारधारासु अभिरुचिः संजाता। सन्ति केचित् हरि-वर्ष-पातालदेशस्य विचारका ये योगाभ्यासरत-नव-ब्राह्मणैः सञ्चालितं वेदान्तमूलकं समाजं संस्थापयितुकामा वर्तन्ते, एतादृशरूप एव समाजे लोकस्य कल्याणं त्राणं च मन्यन्ते। अलं विस्तरेण। श्रौतागम-बौद्ध-जैन-सूफी-सिद्धनाथ-सन्तादिनाना विचारासारैः यन्निरन्तरं सिञ्चितं भवति, येन धर्म्म-कला-वाङ्मयादिव्याजेन स्वदेशीयेभ्यो विदेशीयेभ्यश्च कोटि-कोटि मनुष्येभ्यः स्फूर्तिः पुरा अदायि, अद्य दीयते, भविष्यत्स्वपि कालेषु दास्यते तत् संस्कृतं सर्वैरेव मानवकल्याणकांक्षिभिः सयत्नं रक्षणीयम्। आत्महत्यां कर्तुमुद्यतस्य लोभमोह-जनित-संघर्ष-दग्धस्य जगतः एकमात्रत्रात्री श्रुतिलब्धप्राणा भारतीय-विचारधारा भारतीया च संस्कृतिः। तस्याः परिच्छदस्य संस्कृतस्य परिरक्षणं सर्वेषामुदारधियां कर्त्तव्य-मिति निश्चीयते।

भारतीय-संस्कृतिः संस्कृतञ्च जगताम् अनन्यतुल्या विभूतिः। या वेदेभ्यो निस्सृता

कल्याणमयी वाक् अद्यापि भारतीय जीवनं परिप्लावयति सा सर्वेभ्यो लोकेभ्यः स्फूर्तिं दास्यति, सर्वांश्च मनुष्यान् कल्याणं नेष्यति, लोके धर्मभावं विस्तार्य सर्वेषामभ्युदयनिःश्रेयसी साधयिष्यतीति ध्रुवोऽस्माकं विश्वासः।

—मुद्रित भाषणसे, २४ दिसम्बर ४१६७

आचार्य नरेन्द्रदेव

समाजवादी दल के प्रमुख नेता तथा भारत के प्रख्यात विद्वान् आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने गत जनवरी मास में राजकीय संस्कृत कालेज काशी के समावर्त्तन समारोह के अवसर पर दीक्षान्त भाषण करते हुए संस्कृत के सम्बन्ध में कहा—

"......स्वतन्त्र होने पर हमारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। हमारा कर्तव्य है कि संस्कृत विद्या के अध्ययन को हम पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान दें और अन्वेषण के कार्य को प्रोत्साहन दें। आधुनिक युग के दो महापुरुषों के कारण तथा अपनी प्राचीन संस्कृति के कारण हमारा संसार में आदर है। यह खेद का विषय होगा यदि हम इस आवश्यक कर्तव्य की ओर उचित ध्यान न दें और संस्कृत वाङ्मय की रक्षा और वृद्धि के प्रति उदासीनता दिखावें। संस्कृत वाङ्मय आदर और गौरव की वस्तु है और उसका विस्तार और गाम्भीर्य हमें चकित कर देता है। हमको उसका उचित गर्व होना चाहिये।

संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन आर्यभाषा है। जिसका वाङ्मय आज भी विद्यमान है। ऋग्वेद हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। रामायण और महाभारत संसार के अनुपम और बेजोड़ काव्य हैं। यही हमारी संस्कृति की मूलभित्ति हैं।

मासिक "जनवाणी" में प्रकाशित,
फरवरी १९४९,

जयप्रकाश नारायण

भारतीय समाजवादी दल के आचार्य और नेता माननीय जयप्रकाश बाबू अपने प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन की आवश्यकता के सम्बन्ध में लिखते हैं—

साधारणतः भारतीय हिन्दू अपने प्राचीन वाङ्मय से सर्वथा अपरिचित होता है। जो अपढ़ हैं, उनका तो कहना ही क्या! अधिक से अधिक उनके लिये इतना ही सम्भव है कि गावों के कथावाचकों से वे उस वाङ्मय का थोड़ा परिचय प्राप्त करें। लेकिन कथावाचक प्रायः रामायण श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों से आगे नहीं जाते। जो पढ़े हिन्दू हैं वे अधिकतर अंग्रेजी वाङ्मय से परिचित होते हैं। इसमें भारतीय

शिक्षा पद्धति का दोष तो है ही, साथ साथ संस्कृत में प्रवेश होने की कठिनाई के कारण जो अपने दर्शनादि, वेदादिको देखना भी चाहते हैं, वे उन्हें देखने के सौभाग्य से वंचित रह जाते हैं। अंग्रेजी के द्वारा इनका मनन कर सकते हैं लेकिन अंग्रेजी की इतनी योग्यता बहुत कम लोगों में होती है। इस परिस्थिति का नतीजा यह होता है कि हममें से अधिकांश अपने प्राचीन वाङ्मय को एक अपूर्व, अग्राह्य, अगम्य वस्तु समझ लेते हैं, जिससे हमारा मानसिक स्वातन्त्र्य और हमारा स्वाभाविक विकास दब जाता है। हमारे वेद, हमारे दर्शन हिमालयशृङ्खला बन जाते हैं, जिनकी चोटी पर हमारा पहुँचना असाध्य मान लिया जाता है। इस मानसिक और बौद्धिक संकोच को मिटाये बिना हम में न विचार-स्वातन्त्र्य पैदा हो सकता है और न मानसिक साहस। यदि प्राचीन भित्तियों के आधार पर हमें सभ्यता की नई मञ्जिलें खडी करनी हैं, तो उन भित्तियों को दृढ़ करना और उनका महत्व समझना आवश्यक होगा।

"जयप्रकाश की विचारधारा"

(पृ० २७३)

राहुल सांकृत्यायन

शिक्षित समाज को महापण्डित त्रिपिटकाचार्य राहुलसांकृत्यायन का परिचय देना अनावश्यक है। आप अनेक भाषाओं के विद्वान् तथा अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त भारतीय विद्वानों में एक हैं। संस्कृत के सम्बन्ध में आपने एक पत्र में अपने विचार लिखकर भेजे थे वह निम्नलिखित है—

अस्मत्प्राचीनतमा वाणी संस्कृतरूपेणाद्यापि विद्यमाना। सेयं आर्यभारती न केवलं भारतीयानामेव शेवधिः, सिन्धु-युरोपीय-भाषाभाषिणां सर्वेषां स्वभाषेतिवृत्त-परिज्ञानाय न संस्कृतमृतेऽन्यः पन्थाः। अत एवेयं गीः सर्वेषु पाश्चात्य-विश्वविद्यालयेषु सबहुमानं पाठ्य-विषयेषु सन्निवेशिता पौरस्त्यदेशेषु च चीनजापानप्रभृतिषु बौद्ध-वांङ्मयस्य मूलवाणीति तत्र सम्मानिता। एवम् अस्ति अखिलेऽपि भूवलये संस्कृत भारत्या विद्यासु स्थानम्। अस्माकन्तु नेदीयान् औरसः सम्बन्ध इति युक्तस्तत्र स्नेहातिरेकः.............................।

श्लाघनीयः भवत्प्रयत्नः संस्कृतभाषाप्रसाराय। यथाऽधिगमनं अस्याः सुलभं स्यात् तथा साहित्यसम्पत्तिरपि सम्पादनीया।......कथं न हिन्दी कथाग्रन्थवत् संस्कृतसाहित्यग्रन्थानां स्यात् सार्वजनीनमध्ययनम्?

इति सस्नेहं भवतः

राहुलः संकृति सगोत्रः

डा० अमरनाथ झा

प्रयाग विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति एवं पब्लिक सर्विस कमीशन, यू० पी० के वर्तमान अध्यक्ष डा० झा महोदय भारत के सुविख्यात विद्वानों में हैं। आप अपनी पुस्तक "विचारधारा" में भारत के प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिये संस्कृतज्ञान की आवश्यकता बतलाते हुए लिखते हैं—

"इस देश के प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिये संस्कृतका ज्ञान परम आवश्यक है। हमारे पुराने ग्रन्थ, हमारा दर्शन शास्त्र, हमारी वैज्ञानिक पुस्तकें, हमारी धार्मिक पुस्तकें, हमारे नाटक और काव्य—सभी संस्कृत में हैं। संस्कृत की सहायता से हम देश के और प्रान्त के वासियों से परस्पर वार्तालाप और पत्र व्यवहार कर सकते हैं। समस्त देश के विभिन्न समुदाय पर संस्कृत का प्रभाव है और सभी भाषाएं-आर्य अथवा द्राविड़ी-संस्कृत से प्रभावित हुई हैं। और हिन्दी तो संस्कृततनया है ही।

विचारधारा, पृ० ६७

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी

भारत के सुप्रसिद्ध भाषा-विज्ञान शास्त्री तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान के प्राध्यापक श्री चटर्जी महोदय लिखते हैं—

१

कमं से कम तीन हजार वर्ष से संस्कृत भाषा भारतीय सभ्यता का प्रतीक बन रही है। संकृत का प्रभाव हमारी शिरा उपशिराओं में प्रविष्ट हुवा है। यदि हमारी सभ्यता पर हमारी कुछ भी श्रद्धा रहे, कुछ भी अभिमान रहे तो हम संस्कृत को छोड़ नहीं सकते। संस्कृत की ज्योति ने एक समय समग्र पूर्व एशिया खण्ड को उद्भासित किया था।

(हिन्दी पत्रिका)
सितम्बर १९४१

२

२० नवम्बर को प्रयाग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित सभा में राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर भाषण करते हुए आपने कहा कि—

"………आज समस्त देश की दृष्टि राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर है। यदि मेरी निजी राय ली जाती तो मैं कहता कि सरल संस्कृत को ही राष्ट्र भाषा बनाया जाय।

सांस्कृतिक दृष्टि से यही सर्वोत्तम होता परन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से इसमें कुछ कठिनाइयाँ हैं। अतः इसके अभाव में हमें संस्कृत निष्ठ हिन्दी पर ही सन्तोष करना होगा।"

"संसार" २३ नवम्बर १९४८

रेखाङ्कित वाक्य से पाठक समझ सकते हैं कि संस्कृत का ज्ञान हमारे लिए कितना आवश्यक और अनुपेक्षणीय है।

काका कालेलकर

गुजरात तथा गुजराती साहित्य के सुविख्यात विद्वान् श्रीमान काका कालेलकर महोदय लिखते हैं—

मराठी गुजराती बंगाली आदि भाषाएँ जैसे—संस्कृत कुटुम्ब की हैं उसी प्रकार हिन्दी भी संस्कृत कुटुम्ब की है। संस्कृत भाषा संस्कार, समृद्धि और विकास की क्षमता की दृष्टि से दुनिया की प्राचीन या अर्वाचीन किसी भी भाषा से कम नहीं है। जो विरासत में हमें मिली है उस पर हमें अभिमान है। संस्कृत का द्रोह हम से कभी न होगा। अगर हमने मध्यकाल में अन्धे बनकर देववाणी का प्रचार न रोका होता तो हमारे देश की आज जैसी दुर्गति हुई है वैसी न हुई होती।

विश्ववाणी, नवम्बर १९४५

तथापि हिन्दुस्तानी के लिए इतना आग्रह ?

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०

क्यूरेटर, म्यूजियम दिल्ली

श्रीमान् अग्रवाल जी की गणना भारत के गिने चुने विद्वानों में है। आप संस्कृत साहित्य तथा पुरातत्व के प्रकाण्ड पण्डित हैं। संस्कृत के सम्बन्ध में जो आपने विचार निम्नांङ्कित पंक्तियों में प्रकट किये हैं वे आप के अनुरूप ही हैं। पाठकगण ध्यान से पढ़ें।

हमारा विशाल संस्कृत साहित्य हमारे आदर्शों और विचारों का मानसर है। वहाँ से लोककी सरस्वती जन्म पाकर सब को प्रकाश और बल देगी। पुरातन संस्थाओं और सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद हम राष्ट्र गठन का सच्चा रहस्य जान पाएँगे। पौर जनपद सभाओं से, साहित्य और समाज की परिषदों से, श्रेणी निगम और पूग की समितियों से परिचय प्राप्त करने के लिए हमें अपनी संस्कृति की भूमि की शरण में जाना चाहिए जिसका द्वार संस्कृत साहित्य में खुला हुआ है।

इस देश में आलोचना के सिद्धान्तों के बारे में क्या सोचा जा चुका है—रस, रीति, ध्वनि क्या है, उसका दार्शनिक और साहित्यिक स्वरूप क्या है और मानव जीवन के सनातन मनोभावों के साथ उनका क्या सम्बन्ध है इसको बिना पढ़े जो आलोचक केवल मैथ्यू आर्नोल्ड या वोर्सफोल्ड के विचारों को घोंटकर हिन्दी साहित्य की भूरि समीक्षा करने लग जाते हैं उनका लिखा हुवा साहित्य, और चाहे जो हो, लोक की वस्तु नहीं बन सकता, राष्ट्रीय वृद्धि के कीटाणु उनमें नहीं पनप सकते। शब्दों के निर्वाचन और व्याकरण या शिक्षा के किन सिद्धान्तों का इस देश में पहले विचार हो चुका है उसकी बारह खड़ी से भी जो अपरिचित रह जावें वे लेखक हिन्दी के भाषाशास्त्र का निवचन करते हुए— पश्चिमी ज्ञान के लाठी के सहारे ही चल पाएँगे। इस समय हिन्दी की नई वर्णमाला का स्वरूप स्थिर करने के लिए अर्ध एकार और अर्ध ओकार पर खाली बहस देखने में आता है। पर क्या हमें मालूल है कि ईसा से भी कई सौ वर्ष पहिले सामवेद की सात्यमुग्नि और राणायनीय शाखाओं के आचार्यों ने अपनी परिषदों में इन दोनों उच्चारणों का ठीक ठीक निर्णय कर दिया था। इस प्रकार के कितने विमर्श भारत के अतीत साहित्य से हमें प्राप्त करने हैं। यूनान के साहित्य और संस्कृति का उत्तराधिकार यूरोप ने प्राप्त किया, अपने आपको इस विद्यादाय में शामिल करके यूरोप के विद्वान् अपने को धन्य मानते हैं, तो क्या भारतवासी अपने इस ब्रह्मदाय से पराङ्मुख रहकर अपने राष्ट्र के भावी अस्तित्व या ज्ञान कोष का स्वस्थ निर्माण कर सकेंगे ? कदापि नहीं। हम को तो इस विराट साहित्य के रोम रोम में भिगकर हिन्दी भाषा के द्वारा उनको नये नये रूपों में देखना पड़ेगा। उसके साथ हमारा सम्बन्ध आज का नहीं है। वह साहित्य हमारे पूर्वजों के भी गुरुओं का है। अपने राष्ट्रीय नवाभ्युत्थान के समय हम अपने उस मूल्यवान साहित्य को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। हिन्दी लेखक जब तक इस ऋषि-ऋण से उऋण नहीं होंगे वे लोक साहित्य की सृष्टि में पिछड़े रहेंगे। कल्पना कीजिए कि व्यास की शत-साहस्री संहिता को, जिसे पूर्व लोगों ने श्रद्धा के भाव से पंचम वेद की पदवी दी थी, छोड़कर हम कितने दरिद्र रह जाते हैं। उस जय नामक इतिहास को अथवा आदि कवि के शब्द ब्रह्म के नवावतार रामायण को साथ लेकर आगे बढ़ने में हमारा विद्यादाय समृद्ध बन जाता है।

भारत के साहित्यकारों, विशेषतः हिन्दी साहित्य मनीषियों को चाहिए कि इस नवीन दृष्टिकोण को अपना कर साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का साक्षात् दर्शन करें। दर्शन ही ऋषित्व है। ऋषियों की साधना के बिना राष्ट्र या उसके साहित्य का जन्म नहीं होता।

जीवन साहित्य, वर्ष १ अंक १

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

बम्बई के भूतपूर्व प्रधानमंत्री तथा भारत के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री मुंशी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उदयपुर में सम्पन्न ३३ वें अधिवेशन के अध्यक्षपद से भाषण करते हुए कहते हैं—

"जिस भाषा की सांस्कारिक प्रेरणा सबसे अधिक स्वाभाविकता का बल देती है, उसे यदि राष्ट्रभाषा कहा जाय तो संस्कृत हमारी राष्ट्रभाषा है"।

हिन्दी संस्कृत बिना समृद्ध नहीं हो सकती। संस्कृत की प्ररणा के बिना यह सरसता का वाहन नहीं बन सकती। इस जननी से मुझे शरम नहीं आती। मैं अपनी इस मां से प्रेरणा लेता हूँ। इसलिये मैं किसी से माफी नहीं मागता, मागूगां भी नहीं"। के० एम० मुंशी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

शान्तिनिकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा हिन्दी एवं संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री द्विवेदी जी ने गत वर्ष एक लिखित पत्र द्वारा संस्कृत के सम्बन्ध में अपने विचार भेजने की कृपा की थी। पत्र का आवश्यक अंश निम्नलिखित है—

"संस्कृत भाषा के प्रचार के लिये आप जो श्रमकर रहे हैं वह बहुत अभिनन्दनीय है। इस देश में संस्कृत प्रचार के लिये प्राचीन भारतीय गौरव के प्रचार की आवश्यकता है। सहृदय और सुसंस्कृत व्यक्ति को यह अनुभव करा देना चाहिये कि भारतवर्ष का धर्म साहित्य, कला, स्थापत्य आदि कुछ भी ऐसा नहीं है जो इस भाषा को जाने बिना समझा जा सके। हमारे देश वासियों को यह समझ लेना होगा कि संस्कृत के बिना न तो समाजविज्ञान का अच्छा अध्ययन हो सकता है न नृतत्वविज्ञान का। यह बार बार प्रचार करने की आवश्यकता है कि संस्कृत का साहित्य मानव समाज के विकास की प्रत्येक सीढी का प्रतिनिधित्व करता है। संसार में इसका प्रतिद्वन्दी दूसरा साहित्य नहीं।

(ह०) हजारी प्रसाद
शान्ति निकेतन
१५-५-४८

डा० आर० सी० मजुमदार

ढाका विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति तथा सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् डा० रमेशचन्द्र मजुमदार एम० ए० पी-एच० डी० 'गतवर्ष दरभंगा में सम्पन्न अखिल

भारतीय प्राच्य विद्या महासम्मेलन (आल इंडिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स) के चतुर्दश अधिवेशन के सभापति थे। भाषण में भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा ज्ञान के लिए संस्कृतशिक्षा की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए संस्कृत के प्रति आपने जो विचार प्रकट किये हैं वे प्रत्येक आङ्गलशिक्षा प्राप्त व्यक्ति के ध्यान देने योग्य हैं। यथा—

भारतकी प्राचीन संस्कृति तथा इतिहास के अध्ययन के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि संस्कृत के अध्ययन का पूर्ण प्रचार किया जाय और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों के द्वारा संस्कृत को उच्च तथा सार्वजनिक शिक्षापद्धति में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय। संस्कृत भाषा तथा साहित्य का अध्ययन इस समय सार्वजनिक शिक्षा का अङ्ग नहीं समझा जाता। संस्कृत का अध्ययन पण्डितों तक ही सीमित है जिनकी शिक्षा टोलों में होती है, क्योंकि थोड़े ही लोग, जो उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालय में जाते हैं, संस्कृत की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अर्वाचीन उच्च शिक्षा तथा संस्कृत के ज्ञान के बीच एक गहरी खाई उपन्न हो गयी है। इसका परिणाम बड़ा ही दौर्भाग्यपूर्ण और सांस्कृतिक दृष्टि से तो बड़ा ही भयंकर है।

भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिये जितनी साधन स्वरूप पुस्तकें हैं वे सब संस्कृत में अथवा संस्कृत से उत्पन्न किसी भाषामें लिखी गई हैं। और यदि सभी उन्नत विचार वाले पुरुष, जिनकी शिक्षा अर्वाचीन ढंग से हुई है, जिनकी श्रेणी में हमारे मनीषी तथा नेता आते हैं, यदि संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ रहें तो भारतीय संस्कृति का हमारे आगामी जीवन, नीति तथा इच्छाओं पर पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ सकता है"।

मुद्रित अंग्रेजी व्याख्यान का अनुवाद

१५ अक्टूबर १९४८

आचार्य शिवपूजन सहाय

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वानों में सहाय जी का कितना ऊँचा स्थान है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु हिन्दी साहित्य के साथ ही साथ संस्कृत साहित्य के भी आप अनन्य अनुरागी तथा मर्मज्ञ हैं। और भारतीय संस्कृति के तो आप समर्थक ही नहीं प्रत्युत उसके परम उपासक भी हैं। निम्नांकित पंक्तियों में संस्कृत एवं संस्कृति के सम्बन्ध में जो आपने मार्मिक विचार प्रगट किये हैं उसके एक एक शब्द कितने गंभीर और वास्तविकता से परिपूर्ण हैं वह देखने ही लायक है। यथा—

संस्कृत साहित्य में जो ओज माधुर्य और प्रसाद है, वह वर्णनातीत है। शब्द सौष्ठव, शब्द कौशल, शब्द योजना, भावगाम्भीर्य, कल्पना चमत्कार, रसपरिपाक,

छन्द लालित्य, नाद सौन्दर्य, अर्थालङ्कार, शब्दालङ्कार, लक्षणा-व्यञ्जना-ध्वनि आदि जो कुछ भी साहित्य का प्राण अथवा काव्य का जीवन सर्वस्व है, सब कुछ संस्कृत में भरपूर है। काव्य का वाह्याङ्ग और अन्तरङ्ग इतना ललित, सरस, चित्ताकर्षक मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही तथा मनःप्राणोन्मादक है कि शब्दों द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह अनिर्वचनीय है, केवल सहृदय-हृदय संवेद्य है। शब्दसौकर्य के साथ पद माधुरी और अर्थ गौरव विलक्षण है। मन मुग्ध हो जाता है। प्राण तृप्त हो जाते हैं। कवियों की सूक्ष्मदर्शिता देख स्तब्ध रह जाना पड़ता है। जिह्वा को जो सुधारस मिलता है उसके स्वाद का वह अनुभव तो करती है पर कह नहीं सकती—यद्यपि वह रसज्ञा और वाणी दोनों है। यदि जिह्वा के हृदय भी होता तो अपने अनुभव का कुछ वर्णन कर सकती। हृदय के भी यदि जिह्वा होती तो वह अपनी अनुभूति को व्यञ्जित कर सकता। किन्तु दोनों ही, संस्कृत पढ़ते ही, आत्म विस्मृत हो जाते हैं। संस्कृत की स्वाभाविक सुन्दरता और मधुरता की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा ही होगा। काव्यों की बात छोड़िये। वैदिक साहित्य, उपनिषद, दर्शन, गणित वैद्यक, कोष स्मृति आदि के अन्दर भी कहीं कहीं रस की अन्तः सलिला प्रवाहित दीख पड़ती है। ज्योतिष और व्याकरण में भी यत्र तत्र रसस्रोत मिल ही जाता है। हमारे पूर्वज हमारे ऋषि मुनि कितने रसिक, सहृदय, अन्तर्दर्शी, चिन्तनशील, वाग्विलासी, आनन्दतल्लीन, स्वाधीनचेता और मेधावी थे यह संस्कृत ही बतलाती है। वैसे वैसे मनीषी भूमण्डल में अन्यत्र दुर्लभ हैं।

इसी लिये संस्कृत के बिना संस्कृति अनाथा है। अनाथा संस्कृति को संस्कृत ही सनाथा कर सकती है। सब लोग संस्कृति रक्षा की चर्चा करते हैं, पर कभी संस्कृत के अध्ययन और प्रचार पर ध्यान नहीं देते। जिसे देखिए वही संस्कृति की बात करता है, पर संस्कृत की रक्षा एवं वृद्धि के बिना संस्कृति की चर्चा व्यर्थ है। संस्कृत से जन साधारण का संसर्ग छूट गया है, इसके लिये संस्कृतज्ञ भी दोषी हैं। राधास्वामी रामायण का प्रचार बढ़ रहा है, वाल्मीकीय व अध्यात्म रामायण एवं श्रीमद्भागवत का प्रचार घट रहा है। नगर और ग्राम में सर्वत्र देखिये। कथावाचक पण्डितों का अभाव है। रोचक ढंग से संस्कृत के ग्रन्थों को जनता के सामने पेश करने की जरूरत है। उसी के साथ साथ संस्कृत की ओर लोगों का ध्यान भी आकृष्ट करना है। संस्कृत की पाठशालाओं की संख्या गाँवों में कम है। सरकार मौन है या तत्पर नहीं है। गाँवों में बच्चों को और युवकों को संस्कृत की शिक्षा दी जानी चाहिये। महिलाओं या कन्याओं को भी संस्कृत पढ़ाना चाहिये तभी माताओं की सन्तानें संस्कृतज्ञ हो सकेंगी। विप्रों के सिवा अन्य वर्णों को भी संस्कृत पढ़ने के लिये प्रेरित करना चाहिये। काव्य और कथा के ग्रन्थों को अभी प्रचार मात्र की दृष्टि से सरल शुद्ध हिन्दी में जनता के पास तक पहुँचाना चाहिये। संस्कृत का महत्व सब लोग

शीघ्र ही समझ लेंगे। इसका प्रभाव मन पर तुरन्त पड़ता है। भारतीय हृदय और मस्तिष्क के वह अनुकूल है। हमारी प्रकृति मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के भी वह अनुकूल है। संस्कृत के आधार पर ही भारतीयता टिक सकती है। संस्कृत के बिना भारतीय सभ्यता का रूप रंग बदल जायगा, वही हो रहा है।

सहायजी के हस्त लिखित पत्र से,
२ मई, छपरा

डा० रघुवीर

भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर डा० रघुवीर एम० ए०, पी एच, डी०, डी० लिट्० संस्कृत तथा भाषाशास्त्र के विशिष्ट विद्वान् हैं। आप के संस्कृत-सम्बन्धी विचार ये हैं—

"भारत का महत्व संस्कृत साहित्य के ऊपर अवलम्बित है। सह सर्वथा सत्य है कि जो कुछ भी संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाला है वही भारतीय है और वह अन्यत्र कहीं नहीं पाया जा सकता। संस्कृत के उत्थान से भारत का उत्थान और संस्कृत के पतन से भारत का पतन है। प्रत्येक शिक्षाशास्त्री को, चाहे उनका कोई भी धर्म अथवा जाति हो, इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिये। जो लोग अपने विदेश प्रेम के कारण अन्धे हो रहे हैं वे निश्चय ही भारत का महान अपकार कर रहे हैं। प्रत्येक राष्ट्रवादी को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संस्कृत भारत का मेरुदण्ड है जिसे झुकने नहीं देना चाहिये।"

"How to advance Sanskrit studies" शीर्षक हस्तलिखित प्रबन्ध से उद्धृत और अनूदित।

The glory of India is bound up with sanskrit literature. There is no Harm in repeating the truism that what ever is Sanskritic is Indian and that can be found no where else. India stands if sanskrit stands and India falls if sanskrit falls. Every educationists, in India, whatever may be his religion or race must realizethis fact. Those who are blinded by their forein loyalities are definitely harming India. Every true nationalist will have to concede that sanskrit is the backvone should not be allowed to droop down What I have suggested in this article need careful consideration and adoption by all universities.

डा० धीरेन्द्र वर्मा एम. ए., डी. लिट्.

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत वर्माजी ने संस्कृत के पक्ष में बहुत ही युक्तिपूर्ण विचार प्रगट किया है और वह प्रत्येक शिक्षा शास्त्री के ध्यान देने योग्य है—

……हिन्दी के अतिरिक्त मेरी समझ में प्रत्येक नागरिक बालक को थोड़ा ज्ञान अपने देश की परम्परागत संस्कृत भाषा तथा साहित्य का अनिवार्य रूप से होना चाहिये। योरप में तबतक किसी को वास्तव में शिक्षित—यह साक्षर होने से भिन्न बात है—नहीं समझा जाता जब तक वह थोड़ी बहुत योरप की क्लासिक्स अर्थात् ग्रीक या लेटिन नहीं जानता हो। संस्कृत तथा पाली भारत की क्लासिक्स हैं और इनका स्थान भारतीय शिक्षा पद्धति में वही होना चाहिये जो योरप की शिक्षा पद्धति में ग्रीक और लेटिन को प्राप्त है। नागरी लिपि, हिन्दी तथा प्रारम्भिक संस्कृत सीख लेने के बाद आवश्यकतानुसार बच्चों को अन्य भाषायें तथा लिपियाँ सिखायी जा सकती। हैं

(विचारधारा पृ० १५२)

डा० एन० पी० अस्थाना

युक्त प्रान्त के एडवोकेट जनरल, आगरा विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस चान्सलर और भारतीय विद्या प्रचार समिति के प्रधान डाक्टर एन० पी० अस्थाना का वक्तव्य—

"भारत के सांस्कृतिक जीवन में संस्कृत के महत्व पर अधिक बल देने व बड़ाई करने की आवश्यकता नहीं। युगों तक वह भाषा जनता की साधारण बोल चाल की भाषा रही है और आज के युद्ध विथकित संसार के लिये स्थायी सुख शान्ति तथा सद्भावना के सन्देश वाहक मानव ज्ञान का भाण्डागार है। भारतीयों को अपने वास्तविक स्वरूप को सँभालने की इस समय अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि अपनी भाषा के, चाहे वह कितनी उपेक्षित और विस्मृत क्यों न हो, साहित्य एवं इतिहास के बिना वास्तविक प्रगति करना नितान्त असम्भव होता है। ऐसा करने पर ही भारतीयों को ज्ञात होगा कि उनका भूत कितना समुज्ज्वल रहा है और उस ज्ञान को वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने पर उनका भविष्य भी कितना दीप्तिमान हो सकता है। इस हेतु उन्हें विस्मृत संस्कृत साहित्य में निहित निर्मल व शुद्ध स्वर्ण को प्राप्त करने के लिये बहुत छानबीन करने की आवश्यकता है।

भारतीय विद्या प्रचार समिति,
आगरा की योजना से

सेठ गोविन्ददास

"संस्कृत ही भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक"

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरठ में सम्पन्न ३६ वें अधिवेशन के सभापतिपद से भाषण करते हुए भारत के सुप्रसिद्ध मनीषी एवं राष्ट्रकर्मी श्रीयुत सेठ गोविन्ददासजी एम० एल० ए० (केन्द्रिय) ने राष्ट्रभाषा हिन्दी में संस्कृत से सहायता लेने के पक्ष का समर्थन करते हुए जो पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया और अकाट्य तर्क उपस्थित किया वह प्रत्येक संस्कृतपक्षपाती के लिये पठनीय एवं मननीय है। यथा—

"संस्कृत की शब्दसरिता भारतवर्ष की सभी साहित्यिक भाषाओं का पोषण करती है। उसकी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, अभिव्यञ्जनाओं और सूक्तियों से भारत की प्रत्येक भाषा के ग्रन्थ ओत प्रोत हैं। यही भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है। उसके शब्द प्रत्येक भाषा में इतने प्राचुर्य से प्रयुक्त हुए हैं कि कभी कभी दो भारतीय भाषाओं में भेद करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिये विश्वविख्यात कविसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "मानसी" नामक पुस्तक से "सूरदासेर प्रार्थना" शीर्षक कविता लीजिये ×:—

अपार भुवन, उदार गगन, श्यामल काननतल,
बसन्त अति मुग्ध मूरति, स्वच्छ नदीर जल।
विविध वरण सान्ध्यनीरद, ग्रह तारामयी निशि,
विचित्र शोभा शस्य क्षेत्र प्रसारित दूर दिशि।
सुनील गगने घनतर नील, अति दूर गिरिमाला
तार पर पारे रविर उदय, कनक किरण ज्वाला।
चकित तडित सघन वरषा, पूर्ण इन्द्रधनु-
शरत् आकाशे असीम विकास ज्योत्स्ना शुभ्रतनु।

इसे कौन कह सकता है कि यह हिन्दी कविता नहीं। तीन चार स्थलों पर बंगला के प्रत्ययों और विभक्ति चिह्नों को छोड़कर केवल उत्तर ही नहीं दक्षिण भारत भी इसे अपनी काव्य सम्पत्ति कह सकता है।

पं० द्वारका प्रसादजी मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी के महाकाव्य "कृष्णायन" की निम्नलिखित पंक्तियाँ लीजिये। इन्हे किसी भी भारतीय भाषामें अन्तर्भूत किया जा सकता है—

महिधर-शृंग शरीर विराटा,
उत्तमांग पृथु तुंग ललाटा।

वक्ष शैलहिम-शिला विशाला,
उत्थित वाम हस्त तरु शाला।
कर दक्षिण वट कोट भयंकर,
गदा उदग्र अशनि-प्रलयंकर।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त की निम्नलिखित पङ्क्तियों को कुछ ही विभक्तियों के परिवर्तन से प्रत्येक भारतीय समझ सकता है—

श्रवण गगनं में गूंज रहे स्वर ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर।
सृजन-हुताशन को हवि भास्वर बनी पुनः जीवन रज नश्वर!
दृष्टि दिशा में ज्योतिभूत स्वर ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर!
क्रतो स्मर कृतं स्मर!

स्वर्णकिरण पृ० १४६।

गुजराती के आधुनिक कवि श्री नरसिंह राव भोलानाथ की हृदय वीणा शीर्षक कविता लीजिये—

सुन्दर शिव मंगल गुण गाऊँ ईश्वरा
विभुवर भवभयहारक नमुँ महेश्वरा।
मधुर कुसुम विशे रमे गंध सुन्दरा,
कौमुदी मुदप्रदा, उषा मनोहरा,
मृदुल कंठ कोकिलरव श्रवण सुखकरा।

ये पंक्तियाँ किसी भी भारतीय भाषाके कवि की हृदय वीणा की झङ्कार हो सकती हैं। सुदूर उड़ीसा प्रदेश की कविता भी इसी सांस्कृतिक और भाषा-ऐक्य की घोषणा करती है। उदाहरणार्थ सुप्रसिद्ध कवि मधुसूदन राव की "भारत भावना" लीजिये—

एहि कि से पुण्यभूमि भुवन विदित,
सविस्तीर्ण रङ्गभूमि आर्य गौरवार?
एहि कि भारत, यार महिमा संगीत,
गंभीर झङ्कारे पूर्ण दिग दिगन्तर?
एहि कि से सुमनोज्ञ आशा-सरोवर,
यार ज्ञानाऽमृत पाने कृतार्थ धरणी?
यार तेज विभासित देश देशान्तर?

दक्षिण में तामिलभाषी कहते हैं, उनकी भाषा में संस्कृत के शब्द नहीं। उनका यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत तामिलभाषा के सबसे बड़े कोष "तामिल लैक्सीकन" पर दृष्टिपात करने से यह विदित हो जायगा कि तामिल की ५० प्रतिशत शब्दावली संस्कृति की है। महा शब्द से आरम्भ होनेवाले शब्दों की ही संख्या आश्चर्य जनक है—

महाकच्छम्, महागदम् (= ज्वर) महागति, महाकन्द, (लशुन) महाकपित्थ, महाखर्व, महाकवम् (= महाकवि) महाकल्पम्, महाहयम्, महाहासम् (= अट्टहास) महाकायम् (= हाथी) महाग्रीवम् (ऊंट) महाच्छायम् (वडका वृक्ष) महाज्वालम् (यज्ञ की अग्नि) महासङ्घम्, महाशंखम्, महाजम्बु, महाशयम् (समुद्र) महाजनम्, महाशाखा, महासुखम्, महाश्वासरोगम्, महाश्वेतम्, महाशूरम्, महात्यागम्, महात्मा, महादन्त, (हाथी) महाधनम् (सोना, कृषि) महाधातु (सोना) महाद्रुम (पीपल) महातेजम् (पारा) महानागम्, महानिद्रा (मृत्यु) महानिधि, महानिम्बम्, महानीलम् आदि आदि ।

केवल भारत ही नहीं सिंहल स्याम आदि देशों की भाषायें भी संस्कृत से अनुप्राणित हैं । उनकी कविता, धार्मिक विचारधारा, प्रशासन की शब्दावली, वैज्ञानिक पदावली आद्योपान्त संस्कृतमय है । हम सिंहली (.लंका की भाषा) से भी सामान्य जीवन के कुछ शब्द उदाहरण के लिये लेंगे । जहाँ पर भेद है वहाँ अभिवारों में अर्थ दिया गया है । यथा—

लोह (= धातु) गंगा (= नदी) वृकया (= भेड़िया) मध्य रात्रिय, विनाड़ी (मिनट) मोहोत (मुहूर्त, सेकेंड) वसन्त, देवस्थानय (ईसाई गिरजाघर) संज्ञा कणुव (साईन पोस्ट) पाठशालाव, नागरिक शालाव (टाउनहाल) शरीर स्थिति (स्वास्थ्य) शल्य वैद्य ।

लंका में सारे वैज्ञानिक शब्द संस्कृत से निर्माण किये जाते हैं—

तूर्यभाण्डय	पियानो
यन्त्रकारया	एंजीनियर
मुद्राकरण कारया	मुद्रक
रथचक्र	वाइसिकिल
रथचक्र सादना	वाइसिकिल बनाने वाला
गणनपत्रय	बिल
आय-व्यय-लेखनय	औसत पत्रक
सीमासहित समागम	लिमिटेड कम्पनी
धूमनाव	स्टीमर
उपद्रवारक्षक पत्रय	इन्श्योरेन्श पालिसी
दूर शब्दन यन्त्रय	टैलीफोन

लंका में ग्रन्थों के नाम भी संस्कृतमय हैं—

अरबी निसोल्लासय (Arabion nights) सहस्र रजनी चरित्र, आरोग्य दर्पण, लेखक गुण वर्धन, १९२१ में प्रकाशित देह लक्षण विभाव, गुण वर्धन लिखित धनौपायनक्रम" (१९१९) गद्य विनिश्चय (१९२७) रणसिंह रचित गणित

शास्त्रय, १६२६ में मुद्रित "ज्योतिष कथोपकथनय" १६१४ में प्रकाशित "महामारी रोग विभावय" आदि इसी शताब्दी की रचनायें हैं।

इसी प्रकार श्याम देश में भी शब्दावली संस्कृतनिष्ठ है। कथा, कदाचार, कदाहार (हानिकारक भोजन) कनिष्ठ भगिनी, कन्यकापति (जामाता) कपट लेख वहाँ के सामान्य शब्द हैं। प्रशासन सम्बन्धी शब्द लीजिये—

कर्मजल प्रदान	सिंचाई विभाग
कर्म लौहकृत्य	खान विभाग
कर्म धर्मकार	धार्मिक विभाग
कर्म नगरादर	नगर शासन विभाग

नीचे मैं कुछ शब्दों की अर्थ सहित सूची देता हूँ। जिससे ज्ञान हो जायगा कि संस्कृतनिष्ठ शब्दावली ही समस्त भारत, श्याम, सिंहल, डच, हिन्देशिया। आदि को पुनः प्रेम शृङ्खला में बाँध सकती है।

श्यामी शब्द	अर्थ
कर्मकार परिषद्	कम्पनी का डायरेक्टर
कर्मवाचा	कर्मवाच्य
कर्मशूर	चतुर काम करने वाला
कर्म सम्पादिका सभा	कार्य कारिणी सभा
कर्म सार्थी	साथ में काम करने वाला
त्रिकोण	त्रिकोण
त्रिकोण मिति	त्रिकोण मिति
बीज गणित	बीज गणित
रेखा गणित	रेखा गणित
पाटीगणित	अंकगणित
ओष्ठज	ओष्ठ्य वर्ण
ओघ	जल का ओघ
एकचक्षु	काणा
एकमय	समरूपता
एकराज	राजा
एक सार	आवश्यक पत्र
एक वचन	एक वचन
उपराज	वाइसराय
उपचक्षु	चश्मा

अन्तिम शब्द ध्यान देने योग्य है। श्याम का उपचक्षु बतलाता है कि यदि हम संस्कृत से ही सामान्य शब्द लेंगे तभी भारत की सांस्कृतिक एकता स्थिर रह सकती है।"

मुद्रित भाषण से

इन उदाहरणों से पाठक स्पष्ट ही समझ सकते हैं कि यदि समस्त भारत में संस्कृत शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय और सर्वत्र संस्कृत का प्रचार हो जाय तो न केवल भारत में ही प्रत्युत भूमण्डल के एक अन्य विशाल भूभाग के साथ भी हमारी सांस्कृतिक एकता कितनी सुदृढ़ एवं चिरस्थायिनी हो सकती है।

पण्डित कमलापति त्रिपाठी शास्त्री

ऊपर लिखित लेख के साथ ही युक्त प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन के सभापति, युक्त प्रान्तीय असेम्बली और विधान परिषद् के सदस्य "संसार" के सम्पादक माननीय पण्डित कमलापति त्रिपाठी शास्त्री ने सभापति पद से भाषण करते हुए संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के समर्थन के प्रसङ्ग में इस देवी गिरा की गरिमा का जो गान किया है और उसके व्यवहार की आवश्यकता के सम्बन्ध में जो प्रबल तर्क उपस्थित किये हैं वह भी संस्कृत के प्रति सब का ध्यान आकृष्ट करने वाली वस्तु है। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के विरोधियों को लक्ष्य करते हुए आप कहते हैं—

......"मेरी समझ में तो उनकी बातें आतीं ही नहीं जो हिन्दी का विरोध करने का प्रयत्न करते हैं। समझ में नहीं आता कि इसका कारण क्या है? क्या यह विरोध केवल इसलिये है कि हिन्दी में संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्दों की बहुलता अनिवार्य है? यदि यही बात है तो मैं पूछता हूँ कि संस्कृत से इतनी चिढ़ क्यों? संस्कृत ने क्या कोई हमारा अपराध किया है? अरे, उस भाषा में भारतीय राष्ट्र की सारी तपश्चर्या, उसका सत्य दर्शन और उसका गौरव अभिव्यक्त हुआ है। फिर संस्कृत से विरोध करना तो माता के क्षीर से विरोध करने के समान ही होगा; क्योंकि भाषा का महत्त्व जननी के वक्षस्थ-क्षीर के समान ही होता है। संस्कृत आज भी हमारे अभिमान की वस्तु है। हमारे जीवन की स्फूर्ति का स्रोत है और सगर्व अपना मस्तक ऊँचा करने के लिये वही हमें पात्रता प्रदान करती है। फिर उसके साथ विरोध कैसा और क्यों इतनी चिढ़ कि जिस भाषा में उसका अन्तर प्रतिबिम्बित हो रहा हो और जिसे राष्ट्र भाषा बनाने का अधिकार है उसे उसके पद तथा अधिकार से वञ्चित कर दिया जाय? संस्कृत तो हिन्दी पर अपनी प्रतिच्छाया डालती है। यह हिन्दी की विशेषता और उसका गुण है। यह विशेषता ही उसे राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन होने की योग्यता और क्षमता प्रदान करती है। मैं नम्रता पूर्वक हिन्दी के

विरोधियों से कहना चाहता हूँ कि संस्कृत के कारण उसका विरोध करना प्रचण्ड बुद्धि, विपरीतता का परिचय देने के सिवा दूसरा कुछ नहीं है। भारत में भाषा कही जाने लायक कोई भाषा अथवा कोई बोली नहीं है जो इस देश की भाषा अथवा बोली होते हुए संस्कृत से प्रभावित न हुई हो। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से हिन्दी की सब बोलियाँ तो प्रभावित हैं ही साथ साथ आसामी, बगंला, उड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंहली, गोरखाली आदि सब भाषाओं पर इसका गहरा प्रभाव है। तेलगू, कन्नड, तामिल और मलयालम भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का कितनी बहुलता के साथ प्रयोग हुआ है, इसे देख लेना कठिन नहीं है। संस्कृत ने न केवल भारतीय भाषाओं पर प्रत्युत अपनी सीमा का उल्लङ्घन करके किसी समय विश्व के दूसरे भूखण्डों की भाषाओं को भी प्रभावित किया है जिसकी छाया आज भी उन भाषाओं में स्पष्ट झलकती है।

"संसार"
१२ अप्रैल १९४९

श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी

भारत में संस्कृताध्ययन के प्रचार के लिए तर्क उपस्थित करते हुए, अक्तूबर १९४० के "मार्डन रिव्यू" में श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, एम० ए०, व्याकरणाचार्य, काव्य-तीर्थ प्रो०, नागपुर विश्वविद्यालय ने लिखा है:—

शिक्षा की आधुनिक दृष्टि से चकाचौंध में आए हुए हमारे शिक्षाधिकारी भारत में संस्कृताध्ययन की उपेक्षा से अगली संतति की होनेवाली बड़ी हानि को समझते नहीं। तथोक्त "पाश्चात्यीकरण" के उत्साह में वे संस्कृताध्ययन को मृत और अनुपयुक्त विषय मानकर उसकी अवहेला करते हैं। परन्तु उन्हें जानना चाहिए कि इंगलैंड में उनके सगोत्र प्राचीन भाषाओं की महत्ता और उपयोगिता के प्रति उदासीन नहीं हैं। वे न केवल अपनी शिक्षा-योजना में प्राचीन भाषाओं को विशेष स्थान देते हैं, अपितु उन्हें और लोकप्रिय बनाने का उद्योग करते हैं। आगे हम "संयुक्त राज्य की शिक्षा व्यवस्था में प्राचीन भाषाओं के स्थान की जाँच करने के लिए ब्रिटिश शासन द्वारा नियुक्त समिति के" कार्य विवरण से उद्धरण देना चाहते हैं। विवरण पर एक चलते दृष्टिपात से भी यह मानना होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा में प्राचीन भाषाएँ विशेष स्थान की अधिकारिणी हैं। यहाँ यह साफ समझ लेना चाहिए कि लैटिन और ग्रीक का अंगरेजी से वैसा निकट सम्बन्ध नहीं है जैसा संस्कृत का आधुनिक भारतीय भाषाओं से है। आधुनिक भारतीय शब्दों में से बहुतेरे अब भी शुद्ध संस्कृत रूप में व्यवहृत हैं और शेष (विदेशी शब्दों को छोड़कर) संस्कृत से आए हैं।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, कार्तिक १९९० वि०

पं० सीताराम चतुर्वेदी

हिन्दी संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखक तथा शिक्षा-शास्त्री पं० चतुर्वेदी जी के विचार निम्नलिखित हैं। आप अपनी "भाषा की शिक्षा" नामक पुस्तक में संस्कृतिभाषा की चर्चा करते हुए लिखते हैं—

संस्कृति-भाषा से हमारा तात्पर्य उस भाषा से है जिसमें हमारी जाति की पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, उसके आचार-विचार और ज्ञान का भण्डार निहित है। इस दृष्टि से ऐसी संस्कृत ही भाषा है जो हिन्दू जीवन के आदि से अन्त तक के संस्कारों का सञ्चालन करती है और जिसमें हमारी प्राचीन ज्ञानगरिमा सुरक्षित है। संस्कृति-भाषा पढ़ाने का यही उद्देश्य होता है कि हम अपनी सभ्यता, संस्कृति, चिरसंचित ज्ञान और विज्ञान का परिचय प्राप्त करें और अपने पूर्वजों की रूढ़ियों से अलग न हो जायँ। इसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना तो अनिवार्य ही समझना चाहिए।

(भाषा की शिक्षा)

पृ०

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी

हिन्दी जगत् की इस सर्व प्रमुख पत्रिका के सम्पादकीय विचार—

भारत में संस्कृत का महत्व स्वयं सिद्ध है। यह भारत की "भारती" रह चुकी है। अब प्रधान भाषा के रूप में नहीं तो प्राचीन भाषा, आकर भाषा के रूप में यह अवश्य सम्मान्य है। इसके द्वारा भारत की राष्ट्रीय एकता का युग युग से निर्वाह हुआ था और इसका ध्यान रखकर यह निर्वाह अब भी सुकर है। राष्ट्रीय संस्कार तथा व्यवहार का इसके सम्मान में ही हित है।

हम सविश्वास आशा करते हैं कि भारत के राष्ट्रीय पुनर्विधान के अधिकारी-गण राष्ट्रीय शिक्षा-दीक्षा में एवं राष्ट्र भाषा तथा वाङ्मय के निर्माण में प्राचीन भारती संस्कृत के महत्त्व का ध्यान रखकर राष्ट्रहित के विचार से ही इसका समुचित सम्मान करेंगे।

(कार्तिक १९९७)

अखिल एशिया शिक्षा सम्मेलन के

संस्कृत सम्बन्धी प्रस्ताव,

सन् १९३० के २६–२७–२८–२९–३० दिसम्बर को काशीमें आल एशिया एजुकेशनल कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ था जिसमें विभिन्न देशों से अनेक

प्राच्यविद्या-विशारद विद्वान् सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलनमें संस्कृत के सम्बन्धमें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे वे निम्नलिखित हैं—

१—इस सम्मेलन की सम्मति में भारत में संस्कृत को सम्मान और आवश्यकता की दृष्टि से वही स्थान मिलना चाहिये जो यूरोप में ग्रीक और लैटिन को प्राप्त है।

२—इस सम्मेलन के विचारानुसार कोई हिन्दू तबतक पूर्णरूप से हिन्दू नहीं है जब तक कि उसे संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान न हो। इसलिये यह सम्मेलन वर्तमान विश्वविद्यालयों तथा शिक्षाबोर्डों के अधिकारियों से जो प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं—अनुरोध करता है कि वे पाठ्य विषयों में हिन्दुओं के लिये संस्कृत शिक्षा अनिवार्य करें।

३—यह सम्मेलन भारत के प्रत्येक नगरों तथा छोटे बड़े गावों में महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों का प्रतिदिन प्रवचन एवं प्रचार आवश्यक समझता है जिससे कि भारतीयों को प्राचीन संस्कृति सभ्यता की रक्षा तथा अपनी ऐतिहासिक बातों का ज्ञान हो सके।

४—इस सम्मेलन की दृष्टि से पुरोहित वृत्ति वालों को इस कर्म की शिक्षा देना परम आवश्यक है और एतदर्थ यह प्रत्येक संस्कृतज्ञ का आवश्यक कर्तव्य है कि वह संस्कृत के अध्ययन अध्यापन तथा परीक्षा आदि की अभिवृद्धि के लिये प्रयत्नशील हो।

५—इस सम्मेलन की सम्मति में संस्कृत शिक्षा की वर्तमान पद्धति भारतीय संस्कृति और संस्कृत साहित्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है अतः इसका पूर्ण रूप से सुधार होना चाहिये। (इसके लिये उस समय ३६ विद्वानों की एक समिति भी बनी थी।)

उक्त सम्मेलन के विवरण ग्रन्थ से अनूदित,
पृष्ठ ५८

सर मिर्जा इसमाइल

श्री इसमाइल महोदय मुसलमानों में अत्यन्त प्रतिष्ठित तथा उदार विचार के विद्वान् हैं श्री वीरभद्रप्पा के बंगलोर नगरस्थ संस्कृत वेद पाठशाला के रजत-जयंतीमहोत्सव के अवसर पर, १० फरवरी १९४० ई० को आप ने संस्कृत की महत्ता के संबन्ध में कहा—

मैं नहीं जानता कि यह अत्युक्ति मानी जायगी या नहीं यदि मैं कहूँ कि संस्कृत का अध्ययन बुद्धि विलास से बढ़कर ही कुछ वस्तु है। यदि यह मानना स्पष्टतः कठिन होगा कि इस भाषा या साहित्य का ज्ञान साधारण जन के व्यवहारिक जीवन में अपेक्षित है, तो मैं समझता हूँ कि यह कुछ भी अयुक्त न होगा यदि मैं कहूँ कि हमारे शिक्षित युवक अपने समय तथा शक्ति का एक भाग इस महिमामयी और आश्चर्यमयी

भाषा का एक अच्छा सा ज्ञान उपार्जन करने में लगाकर अपना हित ही करेगें। और इतिहास के अध्यवसायी विद्यार्थी के संबन्ध में तो, जो भारत के अतीत की महत्ता समझना चाहता है, मुझे संदेह है यदि वह संस्कृत के विना सचमुच काम चला सकता है। क्योंकि भारत की प्राचीन सभ्यता का सार ही संस्कृत साहित्य है और इसमें हिन्दूधर्म का सार तत्त्व है।

यद्यपिं हिन्दूधर्म और संस्कृत विद्या का इस प्रकार सहयोग है तथापि यह भाषा तथा इसका साहित्य स्वयं जो आकर्पण वहन करते हैं वह भौगोलिक और धार्मिक सीमाओं को पार कर जाता हैं।

(२)

पुनश्च–संस्कृत कालेज, मैलापुर मद्रास के शिलान्यास के अवसर पर भाषण देते हुए आपने कहा—

"यद्यपि सौभाग्यवश यह सम्भव नहीं है तथापि यदि भारतीय जनता के दैनिक जीवन से संस्कृत जव यूरोप की ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं की भाँति नितान्त ही अलग हो जावेगी तो उस समय की क्या स्थिनि होगी इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारतीय जनता के जीवन से एक प्रकाश मिट जायगा और हिन्दु संस्कृति, जिसने विश्व में एक आदरणीय स्थान प्राप्त किया है हिन्दु जाति के जीवन से शीघ्र ही मिट जायगी जो भारत तथा विश्व दोनों के लिये एक अपूरणीय क्षति होगी"।

(तैंजौर सरस्वती महल लाइब्रेरी की
पत्रिका के १९३९ के अङ्क में
प्रकाशित अंग्रेजी भाषण से)

"One can not contemplate with equanimity though happily such an eventuality is most imprabable, a condition of things when Sanskrit would be as divorced from the every-day life of the masses in this country as latin and Greek are in europe. A light would have gone from the life of the people and the distinctive features of Hindu Culture which have won for it an honoured place in world-thaught would soon be effeced from the life of the community to the great disadvantage and loss both of India and of the world."

डा० एच० एच० विल्सन

डा० होरेस हैमन विलसन संस्कृत के बड़े ही अनुरागी और विद्वान व्यक्ति थे। कलकत्ता के संस्कृत कालेज की स्थापना में उनका प्रमुख हाथ था। १८३५ ई० सन् में जब कलकत्ता में लार्ड मेकाले आये तो उन्होंने संस्कृत कालेज को तोड़ देने का प्रयत्न आरम्भ किया। इससे संस्कृत पण्डित समाज में बड़ी अशान्ति फैली और उनमें से एक विद्वान् पं० जयगोपाल तर्कालङ्कार ने एक श्लोक द्वारा डा० विल्सन का कालेज की रक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट किया। वह श्लोक निम्नलिखित है—

अस्मिन् संस्कृतपाठसद्मसरसि त्वत्स्थापिता ये सुधी–
हंसाः कालवशेन पक्षरहिता दूरं गते ते त्वयि।
तत्तीरे निवसन्ति सम्प्रति पुनर्व्याधास्तदुच्छित्तयै
तेभ्यस्तान् यदि पासि पालक तदा कीर्तिश्चिरं स्थास्यति॥

इस के उत्तर में डा० विल्सन ने भी चार श्लोकों ही द्वारा उन्हें आश्वासन लिख भेजा। उन श्लोकों से विदित होता है कि संस्कृत के प्रति उनकी कितनी श्रद्धा और स्नेह था। श्लोक निम्नलिखित है।

विधाता विश्वनिर्माता हंसास्तत्प्रिय-वाहनम्।
अतः प्रियतरत्वेन रक्षिष्यति स एव तान्॥
अमृतं मधुरं सम्यक् संस्कृतं हि ततोऽधिकम्।
देवभोग्यमिदं यस्मात् देवभाषेति कथ्यते॥
न जाने विद्यते किं तत् माधुर्यमत्र संस्कृते।
सर्वदैव समुन्मत्ता येन वैदेशिका वयम्॥
यावद् भारतवर्षः स्यात् यावद् विन्ध्य–हिमाचलौ।
यावद् गंगा च गोदा च तावदेव हि संस्कृतम्॥

उसी समय कालेज के एक दूसरे विद्वान् पं० प्रेमचन्द तर्कवागीश ने भी एक श्लोक द्वारा डा० विल्सन को कालेज की स्थिति से परिचित कराया। श्लोक निम्नाङ्कित है—

गोलश्रीदीर्घिकाया बहुविटपितटे कालिकात्तानगर्याम्
निस्सङ्गो वर्तते संस्कृतपठनगृहाख्यः कुरङ्गः कृशाङ्गः।
हन्तुं तं भीतचित्तं विधृत-खरशरो "मेकले" व्याधराजः
साश्रु ब्रूते स भो भो "उइलसन" महाभाग मां रक्ष रक्ष॥

इसके उत्तर में भी डा० विल्सन से श्लोक द्वारा ही संस्कृत की अविनश्वरता के सम्बन्ध में जो अपनी आशा प्रगट की है वह पढ़ने ही लायक है। श्लोक यह है।

निष्पिष्टाऽपि परं पदाहतिशतैः शश्वद्बहुप्राणिनाम्
सन्तप्ताऽपि करैः सहस्रकिरणेनाऽग्निस्फुलिङ्गोपमैः ।
छागाद्यैश्च विचर्विताऽपि सततं मृष्टा च कुद्दालकैः
दूर्वा न म्रियते कृशापि नितरां धातुर्दया दुर्बले ॥

अर्थ—अनेकानेक प्राणियों के पदाघातों से निरन्तर निष्पिष्ट, सूर्य के अग्निस्फुलिङ्गोपम किरणों से संदग्ध, भेड़ बकरियों द्वारा सतत चर्वित तथा कुदाली आदि से खोदे जाने पर भी कृशकाय दूर्वा कभी विनष्ट नहीं होती। क्यों कि दुर्बलों पर भगवान् की बड़ी कृपा होती है।

"कलिकाता संस्कृत कालेजेर इतिहास" और
संस्कृत रत्नाकर (दिसम्बर १९३५ ई०) के
आधार पर।

प्रोफेसर लुई रेन्यू

पेरिस विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रोफेसर डा० लुई रेन्यू ने अन्न मलै विश्वविद्यालय चिदम्बरम् में १२ दिसम्बर १९४८ को "पश्चिम में संस्कृत के अध्ययन का महत्व" विषय पर भाषण करते हुए कहा—

यहाँ (चिदम्बरम् में) तामिल के, कलकत्ते में बंगला के अथवा पूना में मराठी के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु जिस भाषा ने भारत की एकता स्थापित की है और जिसने यहाँ की संस्कृति का उन्नयन किया है वह केवल संस्कृत ही है, दूसरी कोई भाषा नहीं। भारत की सभी धार्मिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक परम्परायें संस्कृत पर ही आधारित हैं। इनके कारण ही भारत का सम्मान है। दूसरे शब्दों में भारत की सभ्यता आज भी विश्व में सर्वोच्च है।

यहाँ अन्य भाषाओं का भी समृद्ध साहित्य है, किन्तु अन्य भाषाओं में धार्मिक दर्शन तथा विज्ञान का अभाव है। शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्य जैसे महात्माओं ने संस्कृत का ही उपयोग किया। पुराने तामिल साहित्य पर भी संस्कृत का व्यापक प्रभाव है।.........।

संस्कृत ही ऐसी भाषा है जिस पर किसी विदेशी भाषा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वह न केवल भारत में काश्मीर से कन्याकुमारी तक की राष्ट्र भाषा रही है वरन् समस्त एशिया पर इसका प्रभाव रहा है। संस्कृत के माध्यम से ही बौद्ध धर्म अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन, जापान और समस्त दक्षिण पूर्व में फैला था।

दैनिक सन्मार्ग
२० दिसम्बर १९४९

प्रोफेसर वेट्टी हेमन

(प्रथम सीलोन और पश्चात् कोलम्बो विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका)

कतिपय विद्वान् संस्कृत की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ आशङ्कायें भी उपस्थित किया करते हैं। पर उनका उत्तर एक पण्डित के नहीं, एक भारतीय के भी नहीं प्रत्युत एक विदेशी प्राध्यापिका की लेखनी से सुनिये। भंडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट पूना की पत्रिका के विगत जुलाई मास के अङ्क में संस्कृत की महत्ता के सम्बन्ध में लिखित पाण्डित्य पूर्ण निबन्ध के अन्त में आप लिखती हैं—

अब संस्कृत के अध्ययन के विरुद्ध तर्कों के खण्डन के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है। यह मानते हुए भी कि इस प्रकार के विचार संस्कृत मूल ग्रन्थों में पाये जाते हैं, यह कहा जा सकता है कि ऐसी जटिल, प्राचीन एवं मृतभाषा का अध्ययन हम क्यों करें ? क्या हम मूल ग्रंथों के स्थान पर अर्वाचीन भाषाओं में अनूदित संस्कृत-ग्रन्थों का अध्ययन कर संस्कृत के मूलग्रन्थों के अध्ययन जनित लाभ नहीं प्राप्त कर सकते ?

इस सम्बन्ध में प्रथम तो यही विचारणीय है कि क्या संस्कृत सचमुच एक मृतभाषा है ? यद्यपि यह सत्य है कि यह मूल रूप में केवल पण्डितों द्वारा ही बोली जाती है किन्तु प्रान्तीय भाषाओं के रूप में, जिनका मूल स्रोत संस्कृत ही है यह आज भी जीवित है; इसके अतिरिक्त यह इस अर्थ में मृतभाषा नहीं है कि इसमें अमूर्त तथा कृत्रिम रूप से प्रयुक्त रूप नहीं पाये जाते। प्रकृति की भाँति जिसने इसे विचारों तथा भाषागत स्वरूपों को प्रदान किया है, जो इसको उद्बोधित करने के लिये आदर्श ढाँचे के समान हैं, संस्कृत भी सक्रिय रूप में जीवित है।

दूसरी आपत्ति है इसकी जटिलता एवं इसके स्वरूप की कठिनाई के सम्बन्ध में परन्तु संस्कृत की प्राञ्जलता, विभक्ति, उपसर्ग तथा प्रत्यय इस भाषा का अध्ययन अन्य भाषाओं की अपेक्षा—जिनका स्वरूप व्युत्पत्ति की दृष्टि से अस्पष्ट है, सरल बनाते हैं तथा इसके पढ़ने में सम्यक् साहाय्य प्रदान करते हैं। उपसर्गों तथा प्रत्ययों के अर्थों का सूक्ष्म अध्ययन तथा धातु में से शब्द निर्माण सम्बन्धी स्पष्ट निरूपित ढंग के द्वारा संस्कृत के विद्यार्थी को स्वयं अनेक शब्दों के निर्माण करने में बड़ी सहायता मिलती है। अपरञ्च आदि कालीन समृद्ध संस्कृत की अनेक रूपता भाषा वैज्ञानिकों को अन्यान्य भाषाओं विशेषकर उन अर्वाचीन भाषाओं के सम्बन्ध में जिनका रूप खंडित है तथा कम स्पष्ट है, अध्ययन के लिये आदर्श उपस्थित करती है।

संस्कृत का अर्वाचीन भाषाओं में अनुवाद के सम्बन्ध में मेरी सम्मति है कि इसके समृद्ध विचार तथा स्वरूप वर्तमान सीमित स्वरूप वाली भाषाओं में व्यक्त नहीं किये जा सकते। द्वितीयतः जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसके समस्त रूढ़ एवं ध्वनिगत भाव

उन भाषाओं में जिनमें ध्वनिगत अनुभूति कम है परिवर्त्तित नहीं किये जा सकते। तृतीयतः सभी अनुवाद जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है केवल परिवर्त्तन-मात्र ही हैं एवं अनुवादक की निजी व्याख्या हैं। अतः कोई भी अनुवादक मूललेखक का यथार्थ भाव अविकलरूपेण नहीं उपस्थापित कर सकता। संस्कृत प्रायः एक प्रकार से समस्त इण्डोयोरोपिक भाषाओं के चिन्तन तथा भाषागत अभिव्यक्तियों की आधार-शिला ही है। इस कारण संस्कृत के समस्त कोष को विकृत एवं इससे निस्सृत परवर्ती भाषाओं में अनुवाद के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त कारणों एवं तर्कों के द्वारा इस पक्ष की पुष्टि की जा सकती है कि संस्कृत का अध्ययन अत्यावश्यक तथा लाभप्रद है।

and now a last point–a refutation of an argument which could be brought against the study of Sanskrit, one could say, granted that such ideas can be found in the Sanskrit texts; but why should we learn such a complicated ancient and dead language? Can we not get the same benefit from reading instead the many translations of sanskrit texts made in modern languages?

Firstly, is sanskrit actually a dead language? True, it is spoken only by learned Pandits of India in its original forms but it is still alive in all its offsprings, the vernaculars. Furthermore, it has never become a dead language in the sense that it employs abstract, artificially fixed forms and expressions. It is functionally alive like nature itself, which provided for Sanskrit, thought and its linguistic form the inspiring model.

As to the second point the complicated and as such apparently more difficult forms of sanskrit. the lucidity of sanskrit formation in verbal stem, suffixes and prefixes provides a methodical help for larning this language easier than those which are less clear in their anatomical stracture. Intensive study of the mening implied in the prefixes and suffixes and the clearly indicated method of deriving all secondary forms from their respective verbal roots, enable the sanskrit student, in a way, to pro-

duce the various combinations himself. Furthermore it is just that manifoldness of the primitively rich sanskrit that provides the linguists with the best study-model of all languages especially those modern ones in which structure is less diernible for their forms are as it were, mutilated. As to the question of representing sanskrit in modern translalion, its richness of thought and forms can not reproduced in languages of later limited formation.

Secondly, as mentioned above all its irrational and acoustic implication cannot be transferred into a language of less acute sound perception.

And thirdly, all translations are, as the very name suggests, only transformations and subjective interpretation of the translator concerned. Thus none of them can provide and objective an full representation of thearigi-nal again sanskrit is near to the foundation of thought and inguistic expression of the whole Indo European language group. As such sanskrit can not be exhausted in its inner wealth by a translotion into any of its later. and as it were, deformed sister or daughter languages.

From the all above given aspects and reasons the claim can be upheld that the study of sanskrit is an essential and the most fruitful task.

july october 1947

राष्ट्रभाषावादी पक्ष

अपने यहाँ वहुत से संस्कृतज्ञ तथा संस्कृतानुरागी ऐसे भी हैं जो संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं। सम्भवतः सर्वप्रथम अदयार लाइब्रेरी के डाइरेक्टर डा० श्रेडर ने १६०६ ई० में संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की चर्चा की थी। उसके कई वर्ष पश्चात् जब त्रिवेन्द्रम् में अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन (आल इंडिया ओरियेन्टल कान्फ्रेन्स) का नवम अधिवेशन हुआ था तो उसके संस्कृत विभाग के सभापति डा० एफ० डब्ल्यू० टामस ने भी इसके औचित्य का समर्थन किया था। परन्तु इस

पक्ष को विशेष आन्दोलन का रूप अ० भा० देवभाषा परिषद् तथा संस्कृत कार्यालय अयोध्या ने दिया और आज लगभग २५ वर्षों से यह आन्दोलन निरन्तर चल रहा है। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व यह विचार केवल संस्कृतसमाज तक ही सीमित था परन्तु देश विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब १९४८ ई० में मा० डाक्टर कैलाश नाथ काटजू ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष का समर्थन किया है तब से संस्कृत पण्डितों के अतिरिक्त कुछ और लोगों ने भी इसके अनुकूल विचार प्रगट किया है और इस पक्ष के नेताओं में बल और साहस पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है। कलकत्ता में एक संस्कृत प्रचारिणी समिति भी चल रही है जो संस्कृत के राष्ट्रभाषात्व का प्रचार करती है और जिसमें बङ्गाल के कुछ बड़े बड़े विद्वान भी सम्मिलित हैं। इस पक्ष के विचारों में हम यहाँ डा० टामस और डा० काटजू के विचार दे रहे हैं।

डा० एफ० डब्ल्यू० टामस

नवम आल इण्डिया ओरिएंटल कान्फरेन्स (अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन) के सभापति डाक्टर एफ० डब्ल्यू० टामस, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी०, लिट्०, सी० आई० ई०, ने २१ दिसम्बर १९३९ ई० को कान्फरेंस के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष-पद से संस्कृत भाषा का महत्त्व बताते हुए कहा था—

किसी देश्य भाषा की अपेक्षा संस्कृत से विशेष लाभ यह है कि यह बहुतेरी आर्य तथा द्राविड़ भाषाओं में परस्परस्पर्धी व्युत्पन्न शब्दों की एक ही प्रकृति के रूप में प्रसिद्ध है। वाक्य-रचना का अपेक्षित विधान संस्कृत में किसी देश्य भाषा से बड़ा होना आवश्यक नहीं है। भारत के बाहर उन देशों के साथ अंतःसंबन्ध सरल बनाने में संस्कृत से सुविधा होगी, जिनका धार्मिक साहित्य संस्कृतमूलक है। जिनके विस्तार के अन्तर्गत मध्य और पूर्वीय एशिया का बड़ा भाग है।

इसलिए मैं यह नहीं मानता कि संस्कृत का भारतवर्ष के लिए एक सामान्य साहित्यिक माध्यम का स्थान पुनः ग्रहण करना एक सर्वथा गई बीती बात है, क्योंकि इसके विकल्प ये ही हैं कि या तो ऐसा कोई माध्यम न हो (अंगरेजी को छोड़कर जो यह स्मरण रखना चाहिए—कितनी ही आवश्यक भारतीय कल्पनाओं के लिए स्वयं असमर्थ है) या अनिवार्य अनिच्छाओं के रहते किसी एक देशभाषा का प्राधान्य हो जाय।

नवम ओरिएन्टल कान्फरेन्स का विवरण,
पृ० ४०५।

One advantage of Sanskrit in Comparison with any vernacular is that in very many cases it is already known in the vernaculars, both Aryans and dravidian, as the single original form of competing vernacular

derivatives. The neccessary amount of syntex need not be greater in the case of Sanskrit than of a vernacular. Out side of India the Sanskrit would carry with it a convenience by facilitating a solidarity with those countries whose riligious literture has a sanskrit basis, an area which, as we have seen, comprises a great part of central and eastern Asia.

I therefore do not feel the idea of Sanskrit resuming its place as a common litarary medium for India is a hopelessly lost cause, since the alternative either that there should be no such medivm (other than the English which, it should be remembered is in regard to many neccesary Indian notions it self without resources) or the dominance, despite unavoidable reluctances of some particular vernacular.

माननीय डा० काटजू

बंगाल के गवर्नर डा० कैलाशनाथ काटजू ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्धमें कई अवसरों पर अपने विचार और तर्क उपस्थित किये हैं। अंग्रेजी शिक्षित भारतीय विद्वानों में डा० काटजू प्रथम संस्कृत के राष्ट्रभाषात्व के समर्थक हैं। इस सम्बन्धमें आपके विचार निम्नलिखित हैं—

संस्कृत ही राष्ट्रभाषाके लायक

प्रान्तीय भाषाएं, जिसमें हिंदी, बंगला मराठी आदि सम्मिलित हैं संस्कृत से ही सम्बद्ध हैं। द्राविड़ भाषाएं भी संस्कृत से प्रभावित हैं। संपूर्ण भारत में संस्कृत भाषा का मान है। हमारा साहित्य संस्कृत में ही है। हमारे दैनिक जीवन में संस्कृत भाषा ही व्याप्त है। जन्म, मरण, विवाह आदि के अवसरों पर संस्कृत भाषा में ही संस्कार होते हैं। यद्यपि सरकारकी ओरसे संस्कृतप्रचार पर ध्यान नहीं दिया जाता पर इसके बावजूद दिनों दिन संस्कृत भाषा उन्नति पथपर है। संस्कृत पढ़ने लिखने की प्रवृत्ति अनुदिन बढ़ाव पर है। उड़ीसा, युक्तप्रान्त आदि में संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य है। संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने का सवाल ही नहीं वह तो अभी भी भारत की राष्ट्रभाषा है। मुसलमानों को संस्कृत भाषा से घबराना नहीं चाहिये क्योंकि वे प्रांतों में संस्कृत से सम्बद्ध भाषाएँ बोलते ही हैं।

संस्कृत को मृतभाषा समझना भूल

संस्कृत को मृत भाषा समझना भूल है। यह कहने से काम न चलेगा कि लोग संस्कृत बोलते नहीं। प्रांतीय भाषाओं को ही देखें तो पता चलेगा कि बोलचाल की

और साहित्यिक बोली भिन्न होती है। बाजारोंकी हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी में भेद है। प्राचीन भारत में भी संस्कृत जनता की भाषा न थी। जनता की बोली तो प्राकृत थी। भगवान बुद्धने भी प्राकृत में ही धर्मप्रचार किया था। राष्ट्रभाषा को उन्नत बनाने का सामर्थ्य आम जनता में नहीं, यह कार्य तो कवियों और तत्वज्ञानियों का है। संस्कृत के ही द्वारा उत्तम विचार अभिव्यक्त किये जा सकते हैं।

संस्कृत प्रचार का सुझाव

यद्यपि संस्कृत प्रचार में समय लगेगा पर यह कार्य असंभव नहीं कहा जा सकता। स्कूलोंमें प्रान्तीय भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा देना हितकर होगा। भारत के अधिकांश स्कूलों और विश्वविद्यालयों में संस्कृत की पढ़ाई होती है। बी० ए० की परीक्षा में प्रांतीय भाषा तथा हिन्दी के साथ संस्कृत की शिक्षा दी जानी चाहिये। सब कक्षाओं में संस्कृत बोलने की उत्तेजना देने से भी आशाजनक लाभ होगा। संस्कृत व्याकरण की समस्या अवश्य विचारणीय है पर तनिक परिश्रम करने से उसकी सुगमता सिद्ध हो जायगी। अदालतों में प्रान्तीय भाषा के साथ-साथ संस्कृत का भी उपयोग करना चाहिये। हाईकोर्टों में सभी फैसले या तो संस्कृत में दिये जायं या अनूदित किये जायं। इससे भारत के समस्त हाईकोर्टों में मदद मिला करेगी। सभी कानून संस्कृत में अनूदित किये जायं। केन्द्रीय असेम्बली में भी संस्कृत में बोलनेकी सुविधा दी जाय। एक बार राष्ट्रभाषा का प्रश्न तय हो जायगा तब कठिनाई निवारण के उपाय भी निकल आयेगें। प्रश्न यह है कि सभी प्रांतोंको कौन सी राष्ट्रभाषा मान्य होगी। मेरे मत से संस्कृत ही पसन्द की जायगी। इससे लाभ यह होगा कि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार भी सुगमता से हो सकेगा। संस्कृत समझने वाला संस्कृत बहुला हिन्दी मजे में समझ लेगा। राष्ट्रभाषा का प्रश्न राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राष्ट्रभाषा के आधार पर ऐक्यस्थापन सम्भव है। मेरा मत है कि सदियों के हमारे उत्थान पतन में संस्कृत के द्वारा ही एकता स्थापित रही और अब भी इसी को राष्ट्रभाषा बनाने से हमारे लक्ष्यकी पूर्ति हो सकेगी। सन्मार्ग

जनवरी, १९४९,

कुछ अन्य समर्थक

इस पक्ष में कुछ और भी विद्वानों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने अपना मत प्रगट किया है जिनकी नामावली निम्नलिखित है—

महामहोपाध्याय, डा० प्रसन्न कुमार आचार्य एम० ए० डी० लिट० इत्यादि। प्रधान संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग.

डा० सी० कुन्हन राजा एम० ए० डी० फिल० प्रधान संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय। आप की इस सम्बन्ध में अंग्रेजी में दो पुस्तकें भी अदयार लाइ-

ब्रेरी से प्रकाशित हुई हैं जिनके नाम हैं "भारत में संस्कृत" तथा "संस्कृत का भविष्य"। दोनों ही पुस्तकें पठनीय हैं।

डा० श्रीरमा चौधुरी एम० ए० डी० फिल्० ("नेशन" कलकत्ते का अंग्रेजी दैनिक ३१ जुलाई १९४९)

नेशन का सम्पादकीय (अगस्त के प्रथम सप्ताह में १९४९)

भारतवर्ष का सम्पादकीय (कलकत्ते का बंगला मासिक) जनवरी १९४९

संस्कृतम् (**अयोध्या**) **के अनेक लेख**

राष्ट्रधर्म का सम्पादकीय (भाद्रपूर्णिमा २००४)

पं० माखनलाल चतुर्वेदी (सरस्वती, जून १९४८)

अफगानिस्तान में संस्कृत प्रचार

अफगानिस्तान के भी पाठ्यक्रम में संस्कृत को अनिवार्य विषय बना दिया गया है यह कुतूहल जनक समाचार अनेक पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। इस सम्बन्ध में मध्यप्रान्तीय असेम्बली के अध्यक्ष श्रीघनश्याम सिंह गुप्त के पूछने पर उनको उत्तर देते हुए दिल्ली स्थित अफगान राजदूत ने इस निश्चय के कारणों पर प्रकाश डाला और बताया कि—

पश्तो और फारसी की जननी संस्कृत है। अब भी संस्कृत के शब्द उनमें भरे पड़े हैं। संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर ही उक्त भाषाओं को वैज्ञानिक रूपसे सुदृढ़ किया जा सकता है।

दैनिक सन्मार्ग
२० दिसम्बर १९४८ ई०

गत फरवरी में अफगानिस्तान के सुप्रसिद्ध पत्र "अनीस" के सम्पादक भ्रमण करने आये थे। उस अवसर पर भारत के एक पत्र प्रतिनिधि ने उनसे अफगानिस्तान में संस्कृत की स्थिति के सम्बन्ध में बातचीत की और पूछा कि क्या वहाँ के मुसलमानों ने संस्कृत पर कोई आपत्ति न की तथा फारसी और अरबी के लिये जोर नहीं डाला ? इसके उत्तर में "अनीस" के सम्पादक ने कहा—

अरबी सेमेटिक भाषा है। हम लोग आर्य हैं अतः हम लोग संस्कृत की परम्परा के अन्तर्गत हैं और उससे अत्यन्त निकट हैं। हम लोगों को फारसी तथा अरबी से क्या मतलब ? ऐसे भाषा के रूप में जिसे सीखना हो सीख सकता है।

दैनिक संसार
२० फरवरी १९४९

———

अपनी बात

संस्कृत की महत्ता एवं उपयोगिता निर्विवाद

संस्कृत के सम्बन्ध में अबतक जो कतिपय विशिष्ट नेताओं तथा विद्वानों के विचार प्रकाशित किये गये हैं उनसे संस्कृत शिक्षा की उपयोगिता और उसके प्रचार की आवश्यकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और इसी लिये अब इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। संस्कृति–सभ्यता, इतिहास–पुरातत्व, ज्ञान–विज्ञान, आचार–व्यवहार, प्रवृत्ति-परम्परा तथा भाषातत्व आदि जिस किसी भी दृष्टि से देखिये संस्कृत के साथ हम लोगोंका इतना घनिष्ठ तथा अच्छेद्य-अभेद्य सम्बन्ध है कि उससे पृथक् रह कर हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। यह इतना उज्वल सत्य है कि इसमें किसी भी विवेकशील व्यक्ति को लेशमात्र भी मतभेद नहीं हो सकता। प्रसन्नता का विषय है कि आज के सभी गण्यमान्य विद्वान और प्रमुख नेता इस सत्यता को हृदय से स्वीकार कर रहे हैं। इस लिये संस्कृत की महत्ता एवं भारतीय राष्ट्र के लिये उसकी उपयोगिता सर्वमान्य है एवं निर्विवाद है।

फिर संस्कृत की ऐसी अवनति क्यों ?

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यदि संस्कृत के साथ हिन्दु जाति का इतना पुराना और बलिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जब कि यहांतक कहा जाता है कि संस्कृत के बिना हम जीवित नहीं रह सकते तो फिर इसकी प्रगति अवरुद्ध क्यों हो गई और अपनी ही जन्मभूमि में अपनी ही सन्तानों द्वारा इतनी उपेक्षा और अवहेलना क्यों ? इससे तो यही प्रमाणित होता है कि पहले चाहे संस्कृत का जो भी स्थान रहा हो पर वर्तमान समय में उसकी कोई आवश्यकता नहीं। अतः जबतक इस प्रश्न का समाधान नहीं किया जाता और इसकी अवनति के मुख्य कारणों पर प्रकाश नहीं डाला जाता तबतक यह सन्देह दूर नहीं हो सकता और संस्कृत की वास्तविक उपयोगिता समझ में नहीं आ सकती। इसलिये हम यहां कुछ पङ्क्तियों में संस्कृत के प्रति भारतीय जनता की उपेक्षा और उससे उसकी तथा संस्कृतसेवियों की वर्तमान दयनीय अवस्था के यथार्थ कारणों पर प्रकाश डालना चाहते हैं।

संस्कृत की अवनति के कारण

संस्कृत के प्रति भारतीय जनता की उपेक्षा और उसके परिणाम स्वरूप उसकी तथा उसके सेवियों की वर्तमान दयनीय दुरवस्था का सर्वप्रमुख कारण है भारत में

अंग्रेजी राज्य और उसके अधिकारियों की शिक्षासम्बन्धी कूटनीति। अंग्रेजी राज्य के आरम्भकाल से लेकर उसकी समाप्ति तक के उसके अधिकारियों की शिक्षासम्बन्धी नीति का अध्ययन करने से स्पष्टतया विदित होता है कि उनकी इस कूटनीति का संस्कृत के ऊपर कितना भयंकर प्रभाव पड़ा है और उनके चले जाने पर भी उसका संस्कार किस प्रकार अबभी संस्कृत की समुन्नति में प्रबल प्रतिबन्धक बना हुआ है।

१–भारत में अंग्रेजी राज्य और उसकी शिक्षासम्बन्धी नीति

सन् १७५७ ई० में पलासी युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजी राज्य का आरम्भ होता है। उसके बाद से लगभग पचासों वर्षतक राज्य की ओर से शिक्षा के सम्बन्ध में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसके दो कारण थे। एक तो अंग्रेजी राज्य का यह आरम्भिक काल था इसलिये इसके अधिकारी अपनी सत्ता का विस्तार करने तथा उसे दृढ़ बनाने की ही चिन्ता में निरन्तर तल्लीन रहा करते थे। दूसरे उन्हें भारतीय जनता की शिक्षा-दीक्षा में हस्तक्षेप करने से उनके विरोधी हो जाने का भी बराबर सन्देह और आशंका बनी रहती थी। इसी लिये १७९२ में इस्ट इण्डिया कम्पनी को दिये जाने वाले चार्टर में जब विल्बरफोर्स ने एक शिक्षासम्बन्धी नियम जोड़ना चाहा तो वहाँ के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के सदस्यों ने उसका इसलिये विरोध किया कि अभी भारतीयों की शिक्षा तथा संस्कारों में किसी प्रकार का परिवर्तन या हस्तक्षेप करने से उनके प्रतिकूल होजाने का भय है। इन्ही कारणों से १७५७ से १८१२ तक शिक्षा के सम्बन्ध में बृटिश अधिकारी जन कोई निश्चित नीति निर्धारित नहीं कर सके। वे अबतक केवल इस विषय का ही अध्ययन और विचार विमर्श करते रहे कि भारतीयों को शिक्षा दी जाय या नहीं और यदि दी जाय तो किस रूप में और राज्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इस बीच यद्यपि १७८१ में वारेन हेस्टिङ्गस नें कलकत्ता में मोहम्डन कालेज और १७९१ में जोनाथन डंकन ने काशी में संस्कृतकालेज की स्थापना की पर इन दोनों कालेजों की स्थापना का भी मुख्य उद्देश्य भारतीयों को वस्तुतः शिक्षित करने का नहीं था। इनका उद्देश्य था केवल यहाँ की हिन्दु मुस्लिम प्रजा का विश्वास एवं सहानुभूति प्राप्त करना और कचहरी का काम चलाने के लिये हिन्दु और मुस्लिम धर्मशास्त्र जानने वाले पण्डितों और मौलवियों को तैयार करना। क्यों कि उस समय के न्यायालयों में जो अंग्रेज विचारपति होते थे वे अरबी और संस्कृत से अनभिज्ञ होते थे और इस लिये उन्हे पण्डितों और मौलवियों से इस विषय में सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती थी। इसी लिये इन कालेजों की स्थापना की गई थी।

अनन्तर १८१३ में बृटिश पार्लमेन्ट से जो कम्पनी को चार्टर दिया गया उसमें चार्ल्स ग्रान्ट और लार्ड मिन्टो के प्रबल आन्दोलन से भारतीय जनता की शिक्षा के लिये प्रतिवर्ष १ लाख रुपया खर्च करने की अनुमति दी गई। पर क्रान्ति के भय से

इन रुपयों का व्यय भी अधिकतर भारतीय विद्यार्थियों की शिक्षा और सहायता में ही होता रहा। उस समय लार्ड मिन्टों का विचार तिर्हुत और नवद्वीप में दो संस्कृत कालेजों की स्थापना करने का था परन्तु तत्कालीन गवर्नमेन्ट के जूनियर सेक्रेटरी श्री होरेस हेमन विलसन की, जो स्वयं भी संस्कृत के सुयोग्य विद्वान और परम अनुरागी थे—सम्मति से भिन्न भिन्न दो स्थानों में संस्कृतकालेज की स्थापना न कर केन्द्र होने के कारण कलकत्ता में ही एक संस्कृतकालेज की स्थापनाका निश्चय हुआ और १८२१ में बड़े लाट ने उस पर स्वीकृति भी दे दी। फलतः १८२४ से संस्कृत कालेज में संस्कृत के विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाने लगी[1]। परन्तु इस बीच अंग्रेजी शिक्षा को भी अग्रसर करने की ओर अंग्रेज अधिकारी ध्यान देते रहे। लार्ड वेन्टिङ्क ने कोर्ट में अंग्रेजी को प्रधानता दे दी। १८२३ में मि० वार्डन ने नौकरी करने वालों के लिये अंग्रेजी का जानना अनिवार्य घोषित किया। इन कारणों से अंग्रेजी शिक्षा की ओर भारतीय जन स्वयं भी आकृष्ट होने लगे। इस अवधि के बीच विभिन्न स्थानों में प्राचीन रीति से संस्कृत के अनेक विद्यापीठ एवं विद्यालय आदि भी पूर्ववत् चलते रहे। परन्तु अंग्रेजी का धीरे धीरे प्रचलन होते रहने और उसमें नवीन आकर्षण होने के कारण संस्कृत शिक्षा के ह्रास का सूत्रपात तो हो ही गया। इसी बीच संस्कृत के कानूनग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद हो जाने के कारण कचहरियों से भी संस्कृत पण्डितों का वहिष्कार हो गया जिससे इस विषय के अध्ययनाऽध्यापन की प्रथा ही प्रायः बन्द हो गई।

२—पाश्चात्यपद्धति से अनिवार्य अंग्रेजी शिक्षा

परन्तु संस्कृत के लिये सबसे अधिक भयंकर समय १८३३ से आरंभ होता है। इस समय साक्षात् रूप से संस्कृत पर आक्रमण किया गया। पहले बतलाया जा चुका है कि बहुत दिनों तक बृटिश राज्य के अधिकारी इसी संकल्प-विकल्प में पड़े रहे कि भारतीयों को कैसी शिक्षा दी जाय? इस विषय पर कई बार विचार-विमर्श हुआ और अन्त में लार्ड वैन्टिङ्क ने लार्ड-मेकाले को इसका निर्णायक बनाया[2]। लार्डमेकाले ने इस सम्बन्ध में भेजो अपनी सम्मति दी वह संस्कृत के उन्मूलन के लिये प्रथम कठोर कुठाराघात था। अंग्रेजी भाषा और साहित्य की अनिवार्य रूप से शिक्षा देने के पक्ष का समर्थन करते हुए उन्होंने संस्कृत के सम्बन्ध में कहा कि—आर्य-साहित्य में शिक्षा देने योग्य वस्तु है ही क्या? उसके वैद्यक से तो अधिक बातें हमारे यहाँ के घोड़ों का नाल

---

१ कलिकाता संस्कृत कालेजेर इतिहास (बंगला) पृ० १, २ ३.

२ उक्त विषयों के बारे में देखिये—"राष्ट्रिय शिक्षा का इतिहास" तथा History of education in India under the rule of east India company.

बाँधने वाले जानते हैं। उसके ज्योतिष में जो बातें लिखी हैं उन्हें पढ़कर हमारे यहाँ की लड़कियाँ हँसा करती हैं। संस्कृत के इतिहासग्रन्थों में बीस २ तीस २ हजार वर्ष तक राज्य करने वाले राजाओं की कहानियाँ हैं! और भूगोल की तो कुछ बात मत पूछिये! उसके दूध दही घी के समुद्र में तो अध्यापक और विद्यार्थी ही बह जायगें। यदि इस प्रकार के नगण्य साहित्य की ही शिक्षा में हम लोग समय शक्ति और द्रव्य का व्यय करें तो हम लोगों की बुद्धि और विचार को धिक्कार है"। लार्ड मेकाले का यह कथन कितना विवेक शून्य और प्रचण्ड मूर्खतापूर्ण था इसे पाठक स्वयं ही समझ सकते हैं। तथापि अंग्रेज शासकों को धीरे धीरे यह विश्वास हो चला था कि अंग्रेजी के प्रचार से उनके शासन में किसी प्रकार की हानि न होकर लाभ ही होगा इस लिये उन्हों ने उपर्युक्त सम्मति को स्वीकृत किया। साथ ही लार्ड मेकाले अपने राज्य के हित के लिये यह भी चाहते थे कि इस शिक्षा को प्राप्त कर जो युवक निकलें वे केवल रूप रंग में ही भारतीय रहें पर आचार विचार की दृष्टि से वे सर्वथा यूरोपियन हो जाँय जैसा कि निम्नाङ्कित उद्धरण से विदित होगा।

"We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and colour, but english in taste, in opinions, words and intelect."

History of education in India under the rule of the east India company.
p. 87

हमें अपने हित के लिये एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहिये जो हम और हमारे शासितों के बीच दुभाषिये का काम करे, ऐसा वर्ग जो कि रूप-रंग में तो भारतीय हो पर रुचि सम्मति भाषा और विचारों में यूरोपियन हो।"

इससे भी अंग्रेजो ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार में अपना लाभ समझा। अन्ततोगत्वा सब सन्देहों को दूरकर निस्सन्देह रूप से अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का निश्चय हुआ। स्कूल कालेज खुलने लगे। प्रत्येक नौकरी के लिये अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य घोषित किया गया और अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को विशेष वृत्तियाँ और सुविधायें दी जाने लगीं। इन कारणों से तथा पराधीनता के अवश्यम्भावी परिणाम–अपने साहित्य और संस्कृति की उपेक्षा तथा विजेताओं की संस्कृति और साहित्य के प्रति अनुराग के कारण भी भारतीय जन स्वयं भी अंग्रेजी की ओर अधिकाधिक आकृष्ट हुए। पर ध्यान में रखने की बात है कि इस शिक्षा का भी उद्देश्य भारतीयों में वास्तविक शिक्षा देना, उन्हे योग्य बनाना और उनमें सदाचार आदिगुणों का विकाश करना नहीं था। इसका उद्देश्य था केवल नौकर और क्लर्क तैयार करना जिससे राज्यकार्य अच्छी तरह से चल सके और

भारतीयों में पाश्चात्य सभ्यता का भी प्रचार हो सके। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से पढ़े लिखे लोगों में यदि हजार में कोई एक आदमी अच्छा निकला तो वह स्कूल कालेजों की शिक्षा से नहीं प्रत्युत उस शिक्षा के दोषों से अपने को बचाने का प्रयत्न करने और अपने परम्परागत सत् संस्कारों के कारण[1]।

लार्ड मेकाले की सम्मति और योजना के अनुसार जो अंग्रेजी शिक्षा दी जाने लगी उसका संस्कृत पर कितना अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा इसका उल्लेख महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने आल इंडिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स के लाहौरवाले सम्मेलनके सभापतिपदसे भाषण करते हुए बहुत अच्छी तरह किया है। उन्होंने लिखा है कि १८६४ में बंगाल में सौ सुप्रसिद्ध विद्वान् थे जो नवद्वीप से लेकर कलकत्ता तक स्वतन्त्र-रीतिसे अपनी अपनी पाठशाला चलाते थे। परन्तु उसके चौदह वर्षों के पश्चात् जब बंगालके विख्यात साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी के पिता के श्राद्ध के अवसर पर विद्वानों को आमन्त्रित किया गया तो छब्बीस ही विद्वान् सम्मिलित हो सके। अर्थात् चौदह वर्षों में ही ७४ विद्वानों की कमी हो गई[2]। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी संस्कृतज्ञों तथा संस्कृत संस्थाओं की कमी होने लगी।

३—पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार और उसका भारतीयों द्वारा अन्धानुकरण

इस प्रकार अनिवार्य अंग्रेजी शिक्षा संस्कृत लिये विघातक तो हुई ही पर अंग्रेजी शिक्षा और इस शिक्षा के प्रवर्तकों की कूटनीति के कारण यहाँ के शिक्षितों में अपने साहित्य और संस्कृति के प्रति जो घृणा एवं अनादर का भाव उत्पन्न हुआ यह और भी अधिक घातक सिद्ध हुआ। जैसा कि लार्ड मेकाले के कथन से प्रगट होता है अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा दल उत्पन्न करना था जो रूप रंग में तो भारतीय हो (क्योंकि उसके बदलने का तो कोई उपाय ही नहीं था) पर भाषा, वेषभूषा विचार तथा व्यवहार में अंग्रेजों के ही सदृश हो। इस चतुर राजनीतिज्ञ की कल्पना सोलह आने से भी अधिक सही निकली। यहाँ सचमुच ही अंग्रेजी शिक्षित समाज ने अन्धे बनकर अंग्रेजों की प्रत्येक बातों, विशेष कर अवगुणोंका अनुकरण करना प्रारम्भ किया और उनकी समता में अपनी संस्कृति-सभ्यता को सर्वथा हेय समझने लगे। पूर्वजों को मूर्ख की पदवी दी जाने लगी, संस्कृतभाषा को डेड लैंग्वेज—मृतभाषा—कहने में ही बुद्धिमत्ता समझी गई और वेषभूषा तथा आचार-व्यवहार में सब लोग पूरे अंग्रेज बनने का प्रयत्न करने लगे। यह रोग इतने अप्रत्याशित रूपमें बढ़ा कि सन् १९११ में जब

---

१ स्वामी विवेकानन्द, पृ० १३२।

२ कान्फ्रेन्स का विवरण ग्रन्थ, प्रथम खण्ड, पृ० ६६।

एक अमेरिकन शिक्षाशास्त्री भारत में आये तो उन्हें यहाँ ऐसा मालूम पड़ा जैसे वे इंग्लैण्ड में गये हों। नवयुवकों की इस बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्ति का स्वयं अनेक अँग्रेज अधिकारियों ने भी निन्दा की। इस शिक्षा का प्रारम्भिक परिणाम दिखलाते हुए श्रीस्वामी विवेकानन्द जी ने लिखा है—

"स्कूल में जातेही लड़का यह सीखता है कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। इसके बाद सीखता है कि तुम्हारा दादा पागल था। फिर कुछ दिन के बाद सीखता है कि प्राचीन आर्यगण धूर्त थे। आगे चलकर वह सीखता है कि सभी शास्त्र मिथ्या हैं। सोलह वर्ष की अवस्था तक पहुँचने के पहले ही वह प्राणहीन हो जाता है, उसकी रीढ़ ही टूट जाती है।"

स्वामी विवेकानन्द, पृ० १३२

उस समय की इस स्थिति का वङ्गीय साहित्य सम्राट् श्री वङ्किमचन्द्र चटर्जी ने अपने "सुशिक्षित बंगाली और बंगला भाषा" शीर्षक निबन्ध में बड़ी ही मार्मिक भाषा में वर्णन किया है और उन्होने उस समय ऐसा विश्वास प्रगट किया था कि यदि यही स्थिति रही तो दुर्गापूजा के मन्त्र आदि भी अनुवाद करके अंग्रेजी में ही पढ़े जांयगे[1]। इस प्रकार यह समय, इस समय का अंग्रेजी शिक्षित समाज और उनकी यह प्रवृत्ति संस्कृत के लिये बहुत हानिकारक हुई।

४—संस्कृत तथा संस्कृत के विद्वानों की निन्दा एवं उपहास

ऊपर लिखित कारणों के अतिरिक्त कभी कभी स्पष्ट रूप से संस्कृत तथा संस्कृत पण्डितों की निन्दा और उपहास किया जाना भी संस्कृत के ह्रास का कारण था। भारतीयों तथा अंग्रेज विद्वानों में कुछ लोग ऐसे भी हुए हैं जिन्हों ने स्पष्ट रूप से संस्कृत तथा संस्कृत के विद्वानों की निन्दा की है और उनकी हंसी उड़ाई है। यहां एक दो इसके भी उदाहरण दिये जाते हैं।

लार्ड मेकाले ने जिस प्रकार संस्कृत की निन्दा की वह तो ऊपर कहा ही जा चुका है। इसके पहले जब कलकत्ता में संस्कृत कालेज की स्थापना होने जा रही थी तो वहां के सुप्रसिद्ध नागरिक और ब्रह्मसमाज के संस्थापक श्री राजा राममोहन राय ने भी संस्कृत कालेज की स्थापना का विरोध करते हुए संस्कृत के सम्बन्ध में जो अपने विचार प्रगट किये थे उनसे, हमारा जहां तक विश्वास है, अवश्य ही संस्कृत पर अनुचित प्रभाव पड़ा होगा। संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी के ही प्रचार का समर्थन करते हुए उन्होने तत्कालीन शिक्षाधिकारियों के पास एक बड़ा लम्बा पत्र लिखा जिसमें संस्कृत की विचित्र रीति से अनुपादेयता सिद्ध की गई है। उन्हो ने पत्र में व्याकरण वेदान्त न्याय आदि सब के पठन पाठन को बेकार बतलाया और कहा कि इन विषयों के पठन-

---

१ वंकिम निबन्धावली, पृ० ४४

पाठन में अपने जीवन का अमूल्य समय विताकर विद्यार्थी क्या लाभ उठा सकेंगे[1] ? यद्यपि वे अपनी दृष्टि से देश का हित करने के लिये ही अंग्रेजी का प्रचार चाहते थे पर अपने पत्र में संस्कृत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था वह अवश्य ही संस्कृत के लिये अपमान जनक और जनता को उससे विमुख करने वाला था।

संस्कृत पर तीसरा प्रचण्ड निन्दात्मक आक्रमण संस्कृत के सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् डा० मेक्डानल ने, जो अपनेको मुग्धानलाचार्य कहा करते थे, की है। सन् १६०६ में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में उन्हों ने एक लम्बा लेख लिखकर संस्कृत पण्डितों की भरपेट निन्दा की और गवर्नमेन्ट से अनुरोध किया कि यहाँ के स्कूल कालेजों में संस्कृत पढ़ाने के लिये यूरोप के ही विद्वान् रक्खे जांय और जो उच्च कर्मचारी यहाँ आवें वे भी वहीं से संस्कृत पढ़ाकर यहाँ भेजे जांय जिससे उन्हें यहाँ के पण्डितों का मुंह न देखना पड़े। उन्हो ने अपने लेख में न केवल विशुद्ध संस्कृत के ही पण्डितों की प्रत्युत अंग्रेजी पढ़े लिखे संस्कृत के प्रोफेसरों की भी निन्दा की। उनके इस लेख से तत्कालीन संस्कृत के विद्वानों को बड़ा दुःख हुआ। पूना के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी संस्कृत के विद्वान् डा० भण्डारकरने उसके प्रतिवाद में एक प्रबल युक्ति पूर्ण लेख लिखा जिसमें न केवल मुग्धानलाचार्य प्रत्युत उनके गुरु सर विलियम जौन्स की भी अच्छी खबर ली गई थी। इस लेख को उन्हो ने बंगाल एशियाटिक सुसाइटी की पत्रिका और पश्चात् अनेक अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा परन्तु किसी पत्र ने उसे प्रकाशित नहीं किया। तब उन्हे अपने लेख को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना पड़ा। इस प्रसङ्ग का विस्तृत उल्लेख आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के सन् १६०६ के जून वाले अङ्क में किया है जिससे इस विषय पर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार १६१३ में जब बम्बई की गवर्नमेन्ट ने संस्कृत पण्डितों को एक नवीन संस्था द्वारा आचार्य आदि की पदवी देकर अंग्रेजी स्कूल कालेजों में संस्कृताध्यापक का पद देने का विचार किया और इस सम्बन्ध में बम्बई विश्वविद्यालय के अधिकारियों से सम्मति मांगी तो आर० पी० पराञ्जपे तथा अन्य सदस्यों ने भी इसका विरोध किया। समिति में संस्कृत के पण्डितों की तरह २ की निन्दा की गयी, उन्हे निकम्मा बनाया गया। अन्त में इन लोगों ने निश्चित किया कि यदि गवर्नमेन्ट को पण्डितों को अध्यापक बनाना ही है तो एफ० ए० पास करने के बाद ही उन्हे अध्यापक बनावे। बिना अंग्रेजी जाने तो उन्हे पढ़ाने लिखाने का शहूर ही नहीं आयगा इत्यादि। यद्यपि श्री भण्डारकर के प्रयत्न से विरोधियों का यह प्रस्ताव पास न हो सका पर संस्कृत पण्डितों के प्रति अंग्रेजी शिक्षितों का कैसा रुख था इस पर तो इस प्रसङ्ग से प्रकाश पड़ता ही है। और आश्चर्य का विषय यह है कि न केवल अंग्रेजी के ही विद्वान् संस्कृत के पण्डितों को हेय दृष्टि से

[1] कलिकाता संस्कृत कालेजेर इतिहास (बंगला) पृ० ६७–७०

देखते थे अपितु अंग्रेजी के साथ संस्कृत पढ़े लिखे लोग भी विशुद्ध पण्डितों को हेय दृष्टि से देखते थे। निश्चय ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के ऐसे विचार भी संस्कृत तथा केवल संस्कृतज्ञों की उन्नति एवं सम्मान में विशेष बाधक रहे हैं। इसी लिये पूना में समस्त अंग्रेजी स्कूल कालेजों के संस्कृताध्यापकों ने एक समिति में पूना के प्रसिद्ध विद्वान डा० अप्पा साहेब सर देसाई से जब यह प्रश्न किया कि "संस्कृतस्य प्रचारः कथं भवेत्? तो देसाई महोदय ने संस्कृत पण्डितों के प्रति उनके उपर्युक्त दुर्भाव को दूर करना भी संस्कृत प्रचार का एक प्रमुख साधन बताया। इस दुर्भाव का सम्भवतः कारण यह भी था कि अंग्रेजी विद्यालयों के जो संस्कृताध्यापक होते थे वे विशुद्ध संस्कृत-पण्डितों के गम्भीर पाण्डित्य के सामने टिक नहीं सकते थे और इसीलिये वे उनसे ईर्ष्या द्वेष रखते थे। इन दोनों विषयों पर श्री देसाई महोदय के वक्तव्य से बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनके शब्द ये हैं[1]—

"आंग्लभाषाशिक्षणार्थं समुचितद्रव्याभावात् संस्कृतपाठशालायां काव्य-नाटक-व्याकरण-न्याय-मीमांसा-वेदान्तादिशास्त्राध्ययनं कृत्वा उत्तीर्णसंस्कृतपरीक्षाः, लब्धसंस्कृत पदवीकाः, सदा लक्ष्मी-सरस्वत्योः विरोधमनुभवन्तः अतएव जटिलाः, तापसान् अनु-कुर्वन्तः, महता दैन्येन कष्टेन च उपजीविकां कुर्वाणाः, चिरकालशास्त्राध्ययन-कृत-परि-श्रमाः, प्राप्त-शास्त्रतत्वरहस्याः, राम-कृष्ण-पाण्डवादि-सच्चरित्राद्युपवर्णनेन तथा च अहिल्या-द्रौपदी-सीता इत्याद्यादर्शरूपाणां स्त्रीणां वर्णनेन च जनेषु भक्तिमुत्पादयन्तः संस्कृतपण्डिताः सदा संस्कृतभाषाप्रचाराय प्रयतमानाः वर्तन्ते। एते इंग्लिशभाषां न जानन्ति इति नव्याः संस्कृतपण्डिताः तान् निरुयोगिन इति सम्बोधयन्ति। अतः इतरे जना अपि तेषामनुकरणं कुर्वन्ति। तेन गुरुरूपाः शास्त्रिणः प्रायः नष्टाः। ये वर्तन्ते तान् द्विषन्ति एते। एतादृशी स्थितिः यदा नश्येत् तदा संस्कृतभाषायाः प्रचारो भवेत्"।

पुनः, बम्बई प्रान्त में राजकीय संस्कृत महाविद्यालय क्यों नहीं चल रहा है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

मुम्बई प्रान्ते ये आंग्लशिक्षिताः राजकीयसंस्थासु विश्वविद्यालयेषु च आ[illegible] इदानीं वा वर्तन्ते प्रायः ते संस्कृतभाषाऽनभिज्ञाः। अन्ये ये सूचकाः अनुमोदकाः च संस्कृतभाषायाः अल्पज्ञत्वं बहिः प्रकटीभवेत् अनया भीत्या एव राजकीय संस्कृत विद्यालय संस्थापनविरोधिनः। तस्मात् मुम्बईप्रान्ते राजकीय संस्कृत महाविद्याल[illegible] विद्यते।.........एतादृशी परिस्थितिः यदा नश्येत् तदा संस्कृत प्रचारो भवेत्"

इसीलिये कुछ विद्वानों ने यह भी प्रयत्न कई बार किया था कि अंग्रेज[illegible] के संस्कृत पाठ्य ग्रन्थों में से काव्यप्रकाश वेदान्तसूत्रभाष्य तथा न्याय के ग्रन[illegible] दिये जायँ[2]। अस्तु, चाहे जिस कारण से भी हो पर संस्कृत पण्डितों प[illegible]

१ पूना ओरिएन्टलिस्ट (अंग्रेजी) १९४३

२ सरस्वती १ जून, १९०९

विद्वानों की बराबर हेय दृष्टि रही है यह अत्यन्त स्पष्ट है। एक तो अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के कीड़े अप्रत्यक्ष रूप से इसके मूल का निकृन्तन कर ही रहे थे दूसरे ऊपर से भी जब प्रत्यक्ष रूप से कुठाराघात होने लगा तो भला इसका पतन क्यों न हो।

५—संस्कृत के अध्यापकों को कम वेतन देने की नीति

आरम्भ से ही अंग्रेजी के विद्वानों की अपेक्षा संस्कृत विद्वानों के वेतन का न्यून होना भी संस्कृत के ह्रास में एक प्रमुख कारण रहा है। अंग्रेजी विद्वानों के बराबर ही संस्कृत विद्वानों को भी वेतन दिया जाय इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत इसका प्रतिवाद करने पर भी उसका कोई परिणाम नहीं निकला। महाराष्ट्र साहित्य सम्राट् श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने "संस्कृत विद्येचें पुनरुज्जीवन" नाम से एक मराठी में पुस्तक लिखी है जिसमें संस्कृत पण्डितों के वेतन के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। उन्हो ने लिखा है कि १९१२ में शिमला में संस्कृतविद्या तथा संस्कृत के पण्डितों की समुन्नति एवं संरक्षण के लिये जो सभा हुई थी उसमें प्राचीनरीति के पण्डितों की प्रशंसा तो बहुत की गई और स्वयं मार्टिन हौ, बुल्हर, पीटर्सन तथा कीलहार्न आदि संस्कृत के विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया कि यदि इन प्राचीन पण्डितों की सेवा में बैठकर हम लोगों ने संस्कृत का अध्ययन न किया होता तो यूरोप में प्राप्त संस्कृत ज्ञान के बल पर हम लोग कभी भी संस्कृतग्रन्थों को नहीं पढ़ा सकते। इस प्रकार पुराने ढंग के पण्डितों की भूरि २ प्रशंसा की गई और उनके संरक्षण के लिये अनेक उपाय सोचे गये पर किसी अंग्रेज विद्वान् ने यह नहीं सुझाव रक्खा कि इनका वेतन भी बढ़ाया जाय। परिणाम यह था कि संस्कृत के अंग्रेज विद्वानों को जितना वेतन मिलता था उससे कई गुना कम उन संस्कृत के विद्वानों को मिलता था जिन से पढ़ कर अंग्रेज विद्वान् पढ़ाने की योग्यता प्राप्त कर सकते थे। अर्थात् शिष्य का वेतन पाँच सौ तो गुरु का पचास। पर अंग्रेज विद्वानों ने इस अन्याय पर कभी ध्यान नहीं दिया। इसके पूर्व १८८१ में भी एक बार वेतनसम्बन्धी चर्चा चली थी। उस समय के ख्यातनामा विद्वान् न्यायमूर्ति तैलङ्ग ने "टाइम्स आफ इण्डिया" में संस्कृत पण्डितों के वेतन सम्बन्धी इस अन्याय का निर्भीकता पूर्वक प्रतिवाद किया था और इसे अत्यन्त अनुचित प्रमाणित किया था पर उसका भी कुछ परिणाम नहीं हुआ। इसी प्रकार मुम्बई की कौन्सिल में एक बार जब दादासाहब करन्दीकर ने यह प्रश्न किया कि सरकार स्कूलों के संस्कृताऽध्यापकों को अधिक से अधिक कितना वेतन देना चाहती है तो उत्तर मिला [illegible]ठ। और वह भी पचीस वर्षों के अन्त में। इन उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध हो[illegible] अंग्रेज अधिकारी तथा अंग्रेज विद्वान् भी संस्कृताध्यापकों को हेय [illegible] और उन्हे अधिक वेतन नहीं देना चाहते थे। ऐसी स्थिति में अधिक [illegible] व्यक्ति कैसे संस्कृत पढ़ना पसन्द करता।

निष्कर्ष यह कि वेतन का तारतम्य भी संस्कृत के ह्रास में प्रमुख कारण रहा है।

इस प्रकार अंग्रेजों की शिक्षा सम्बन्धी नीति का अध्ययन करने से विदित होता है कि किस प्रकार परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत के ह्रास में वह कारण हुई है। यद्यपि अंग्रेजी राज्य में संस्कृतग्रन्थों का अनुसन्धान, उनका ऐतिहासिक अध्ययन, आलोचनात्मक पठनपाठनपद्धति का प्रवर्तन आदि के द्वारा संस्कृत को लाभ भी बहुत हुआ है जिसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं परन्तु उससे जो संस्कृत का ह्रास हुआ है वह भी कम दुःख का विषय नहीं है। ऐसी विकट परिस्थित में भी जिन विद्वानों ने संस्कृत की परम्परा को जीवित रक्खा वे राष्ट्र के लिये सर्वथा अभिनन्दनीय हैं।

६—संस्कृतशिक्षापद्धति में देशकालोपयोगिताका अभाव।

ऊपर जो संस्कृत के ह्रास के कारण बतलाये गये हैं उनके लिये दायी तो अंग्रेज ही हैं परन्तु इसमें संस्कृत विद्वानों का भी एक दोष प्रबल कारण रहा है। वह दोष था संस्कृतशिक्षा पद्धति को समयानुकूल न बनाना। यदि अंग्रेजी के प्रचलित होने के समय ही संस्कृत के विद्वानों ने तत्कालीन संस्कृतशिक्षापद्धति में परिवर्तन कर अर्थात् उसे सरल बनाकर तथा कुछ नवीन विषयों का समावेश कर उसे देश कालोपयोगी बनाया होता तो हमें संस्कृत का ऐसा ह्रास तथा संस्कृतज्ञों का ऐसा अपमान देखने को नहीं मिलता।

यद्यपि प्राचीन रीति से दी जाने वाली शिक्षापद्धति में भी अनेक गुण थे और गम्भीर पाण्डित्य के लिये तो एकमात्र वही पद्धति उपयुक्त थी। पर उसकी रक्षा करते हुए भी शिक्षापद्धति में नवीनता लाई जा सकती थी परन्तु इस ओर पण्डितसमाज का ध्यान उस समय नहीं गया। और दुःख का विषय है कि आजतक भी संस्कृत शिक्षा की कोई सर्वाङ्गसुन्दर पद्धति नहीं प्रस्तुत हो सकी। अस्तु।

उपर्युक्त विवरणोंसे पाठकों को अब यह स्पष्टतया विदित हो गया होगा कि संस्कृत की यह दशा उसके अनुपयोगी होने के कारण नहीं अपितु विदेशी शासकों की शिक्षासम्बन्धी नीति तथा उसके द्वारा उत्पन्न दूषित वातावरण के कारण हुई। अन्यथा यदि अंग्रेजी के स्थान पर संस्कृत को ही शिक्षा का मध्यम बनाया गया होता, इसी में नवीन ग्रन्थों का निर्माण कर आधुनिक विषयों की भी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया होता और साथही पाश्चात्य जगत् से परिचित कराने के लिये अंग्रेजी की भी शिक्षा दी जाती होती तो न आज इस भाषा की ही ऐसी दशा हुई होती और न देश के शिक्षित समुदाय का हृदय और मस्तिष्क ही इस प्रकार दूषित हुआ होता। परन्तु पराधीनता के यह सब अवश्यंभावी परिणाम हैं फिर भारत ही अकेले इ[illegible] अपवाद कैसे होता?

ऐसी विपरात अवस्था में भी सं[illegible]कृत पण्डि[illegible]परा जो जीवित रह सकी वह ब्राह्मण पण्डितों की कृपा से। उस संकटम[illegible] भगवान की कृपा और देश के सौभाग्य से एक वर्ग ऐसा भी बँचा[illegible]त संस्कारों के कारण

अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा की चकाचौंध में अन्धा न बनकर और ऊँचे ऊँचे पदों और प्रतिष्ठाओं तथा लम्बे लम्बे वेतनों के प्रलोभन में न पड़ कर क्लेशबहुल और अपमानित जीवन व्यतीत कर भी देश की इस राष्ट्रिय निधि का संरक्षण और यथासम्भव उसका सम्बर्धन भी करता रहा। यदि हम कृतघ्न नहीं हैं तो हमें उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करनी पड़ेगी और यह मानना पड़ेगा कि पाश्चात्य सभ्यता और उसके द्वारा प्राप्त अर्थकाम-परायणता की इस भयंकर वात्या में भी अपने को बँचाकर जिन लोगों ने इस साहित्य के पठन-पाठन की परम्परा को जीवित रक्खा और इस प्रकार इस राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट होने से बचाया वे राष्ट्र के सबसे बड़े हितैषी थे और राष्ट्र सर्वदा के लिये उनका ऋणी रहेगा। अस्तु।

अब संस्कृत के प्रति हमारा कर्तव्य

अब तक जो भवितव्य था वह हुआ। अब आगे संस्कृत के प्रति हमारा जो कर्तव्य हो उसे करने के लिये हमें तैयार होना चाहिए। आज हम राजनीतिक परतन्त्रता से मुक्ति पा चुके हैं और इसके परिणाम स्वरूप हमारे विचार और मनोवृत्तियाँ भी अपनी संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल होती जा रही हैं। यही कारण है कि आज उसी उपेक्षिता संस्कृत भाषा के पुनः उत्थान की भी चर्चा सर्वत्र सुनाई पड़ रही है और सभी गण्य मान्य विद्वान और बड़े बड़े नेता राष्ट्रहित के लिये इसके संरक्षण और प्रचार की आवश्यकता का अनुभव और समर्थन कर रहे हैं।

परन्तु यह भी निश्चित है कि केवल संस्कृत की प्रशंसा करने से ही उसकी उन्नति नहीं हो सकती। इस लिये समस्त नेताओं तथा विद्वानों का कर्तव्य है कि यदि वस्तुतः उनके हृदय में संस्कृत के प्रति श्रद्धा है तो वे निम्नाङ्कित उपायों द्वारा संस्कृत तथा संस्कृत के अध्यापकों की दशा समुन्नत करने के लिये प्रयत्नशील हों।

संस्कृत की उन्नति के उपाय

१—समस्त भारत के हिन्दी अंग्रेजी स्कूलों में संस्कृत शिक्षा अनिवार्य की जाय।

२—संस्कृत शिक्षापद्धति में आवश्यक परिवर्तन किये जायँ। तथा संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा अधिक से अधिक सरल सुबोध तथा चित्ताकर्षक बनायी जाय।

३—संस्कृत में नवीन विषयों पर ग्रन्थ लिखने और प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जाय।

४—प्राचीन पाण्डित्य की रक्षा के लिये प्रोत्साहन दिया जाय तथा उसके लिये आवश्यक व्यय किया जाय।

५—संस्कृतज्ञों की जीविका के क्षेत्र ब[illegible] जाँय। तथा वेतन का स्तर ऊँचा किया जाय

६—प्रत्येक ग्रामपंचायत में एक [illegible] के विद्वान जनता को कथा प्रवचन आदि द्वारा उपदेश देने के लि[illegible]

७—कन्याओं के लिये कन्[illegible] खोली जायँ।

८—प्रौढ़ों की संस्कृत [illegible] [illegible]

कार्यालय से यथाशीघ्र प्रकाशित होनेवाली

अन्यान्य पुस्तकें

—:०:—

सरल संस्कृतनिवन्धमाला

हिन्दी संस्कृत-शब्दकोश

संस्कृत-प्रवेशिका

संस्कृतभाषा का इतिहास

संस्कृत के कुछ मनोरञ्जक श्लोक

संस्कृतगीत-माला

संस्कृत साहित्य और विदेशी विद्वान्

संस्कृत की पहेलियाँ तथा कूट श्लोक

महाकवि कालिदास के काव्योंमें नीतिशिक्षा

भौगोलिक संस्कृत शब्द कोश

पुस्तक मिलने तथा पत्रव्यवहार करनेका

तात्कालिक पता— ...त को

व्यवस्थापक—सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

C/o महामंडल, जगतगंज, बनारस कैंट।

प्रकाशक—पं० अवधेशप्रसाद द्विवेदी काव्यतीर्थ, महामंडल, जगतगंज बनारस।